UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180228

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H891 P39K Accession No. G.H 3171

Author पेण्ढरकर, य. दि.

Title कवि-श्री माला : मराठी १९६२

This book should be returned on or before the date last marked below.

कवि-श्री माला

* मराठी *

कवि :

यशवन्त दिनकर पेण्ढरकर

लेखक–सम्पादक

प्र. वा. बोधनी

"भारत सरकार की ओर से भेंट"

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

प्रकाशक :
मोहनलाल भट्ट
मन्त्री :
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति,
हिन्दीनगर, वर्धा

● ● ●

सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रथम संस्करण—३०००
मई, १९६२
मूल्य—रु. २/—

● ● ●

मुद्रक :
मोहनलाल भट्ट
राष्ट्रभाषा प्रेस,
हिन्दीनगर, वर्धा

● ● ●

आमुख

हर्षका विषय है कि राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धा अपने कार्य कालके २५ वर्ष सन् १९६१ में पूरे कर रही है। इस उपलक्ष्यमें मनाये जानेवाले रजत-जयन्ती महोत्सवके अवसर पर सभी भारतीय भाषाओंके मान्य कवियोंका तथा उनके उत्कृष्ट काव्यका परिचय 'कवि-श्री माला' की पच्चीस पुस्तकोंमें हिन्दी-गद्यानुवाद सहित प्रकाशित करनेकी योजनाके अन्तर्गत प्रस्तुत ग्रन्थ पाठकोंके समक्ष आ रहा है।

यद्यपि किसी भी भाषाके सर्वश्रेष्ठ काव्य-सर्जकका निश्चय करना एक कठिन कार्य है, फिर भी अपनी सीमाओंको ध्यानमें रखते हुए गण्यमान्य उन-उन भाषाओंके विद्वानोंकी रायसे ही चुनावका कार्य सम्पन्न किया गया है।

प्रत्येक पुस्तकके आरम्भमें जिस भाषाके कविकी रचनाओंका चयन किया गया है, उस भाषाके साहित्यका परिचय और कवि विशेषका परिचय दिया गया है। जिस भाषाके दो कवियोंका चुनाव किया गया है, उनका चुनाव करते समय सन् १९२० से पूर्वका साहित्य और १९२० से बादका साहित्य--इस तरहसे एक विभाजन-रेखा ध्यानमें रखी गई है। इसका कारण यह है कि लगभग सन् १९२० के पूर्वके तथा १९२० के बादके साहित्यमें प्रवाहित विचार-धारामें एक विशेष प्रकारका अलगाव-सा पाया जाता है।

श्री प्र. वा. बोधनीजीने प्रस्तुत पुस्तकमें संकलित साहित्यको चुनने, काव्यांशको सम्पादित कर सारी सामग्रीको इस रूपमें प्रस्तुत करनेमें सहयोग दिया है। इस पुस्तकके मूल मराठी कवि-परिचय और काव्यांशको हिन्दीमें अनूदित करनेमें श्री श्रीराम अट्टावलकरका एवं साहित्य-परिचयका मराठीसे हिन्दी अनुवाद करनेमें श्री रतनलालजी बाजोरियाका सहयोग मिला है। पुस्तकमें संकलित ब्लॉकका फोटो श्री पं. मु. डांगरेजीके सद्प्रयत्नोंसे उपलब्ध हुआ है। संग्रहकी आवरण डिजाइनको बनवा देनेमें श्री व्ही. एन. अडारकरजी (डीन, सर जे. जे. इन्स्टीटचूट आफ अप्लाईड आर्ट, बम्बई) का उदार सहयोग मिला है, उसके लिए समिति सभीकी आभारी है।

इसके अतिरिक्त छपाई तथा अन्यान्य दृष्टियोंसे जिन-जिनका प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सहयोग मिला है, उनके प्रति भी समिति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती है।

आशा है, प्रस्तुत संग्रह पाठकोंको रुचिकर एवं उपयोगी प्रतीत होगा।

मन्त्री,
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

अनुक्रमणिका

	पृष्ठांक
मराठी-साहित्य-परिचय [सन् १९२० से आज तक]	१
कवि-परिचय	१५
काव्य-सञ्चय	३३

कवि-श्री माला

मराठी

मराठी साहित्य परिचय

[सन १९२० से आज तक]

मराठी भाषा
और
उसका साहित्य

• • •

[नोट—प्रारम्भसे सन् १९२० तकका मराठी साहित्यका संक्षिप्त परिचय 'कवि-श्री माला : मराठी—कृष्णाजी केशव दामले 'केशवसुत' में दिया गया है।]

\+ + +

मराठी साहित्यके इतिहासपर यदि हम एक सरसरी निगाह डालें तो हमें दिखाई देगा कि प्राचीन मराठी साहित्य बहुत कुछ अंशोंमे पद्यात्मक है, गद्य-साहित्य उसमें अपेक्षाकृत बहुत कम है।

मराठीका गद्यात्मक और पद्यात्मक साहित्य १९ वी शताब्दीसे एक नए रूप-रंगमें ढलने लगा। उस शताब्दीका उत्तरार्द्ध इस दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। स्वर्गीय विष्णु शास्त्री चिपळूणकर, लोकमान्य बाल गंगाधर टिळक,* सुधारकश्रेष्ठ गोपाल गणेश आगरकर, हरि नारायण आपटे, नाटककार श्री देवल एवं खाडिलकर तथा कविवर केशवसुत आदिका मराठी साहित्यके गठनमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान है।

---

*महाराष्ट्रमें नाम लिखते समय पहला नाम व्यक्तिका, दूसरा नाम पिताका तथा तीसरा वंश, गोत्र, कुल या पेशेसे सम्बन्धित उपनाम (Surname) रहता है। जैसे—'टिळक' उपनामवाले व्यक्तिका नाम है 'बाळ', उनके पिताजीका नाम है 'गंगाधर'। संक्षेपमें बा. गं. टिळक या मो. क. गाँधी। —अनु०।

बीसवीं शताब्दीकी प्रारम्भिक दो दशाब्दियोंमे यह कार्य दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ता रहा। धीरे-धीरे मराठी साहित्यमें कलात्मक कारीगरीके अधिकाधिक दर्शन होने लगे, वह अधिकाधिक सुगठित बनने लगा। नाटक, अुपन्यास, कहानी, काव्य आदि विविध क्षेत्रोंमें श्री गडकरी, बालकवि, गुर्जर, ना. ह. आपटे इत्यादि नए नए नाम झलकने लगे। इस सबका सम्मिलित परिणाम यह हुआ कि मराठी साहित्यका रूप एकदम नया हो गया। 'सन १९२० का वर्ष महाराष्ट्रकी राजनीतिके समान मराठी साहित्यके लिए भी परिवर्तनकारी सिद्ध हुआ।

उपन्यास :

श्री हरि नारायण आपटेके उपन्यासोंद्वारा सच्चे अर्थोमें मराठी उपन्यासके एक नये दालानका उद्घाटन हुआ। उनके सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यास अत्यन्त रमणीय सिद्ध हुए। आज भी मराठीका पाठक उन्हें बड़े चावसे पढ़ता है। सामाजिक समस्यापर–विधवाके प्रश्नपर आधारित उनका उपन्यास 'पण लक्षांत कोण घेतो' (लेकिन ध्यान कौन देता है), ४०–५० साल पहिलेके महाराष्ट्रको हमारी आँखोंके सामने ला खड़ा करता है। 'गड आला पण सिंह गेला' (किला सर हो गया लेकिन सिंह चला गया), 'उषःकाल' (सूर्योदय) आदि ऐतिहासिक उपन्यासोंमे हमारे सामने छत्रपति शिवाजीकालीन महाराष्ट्र साकार हो उठता है। स्वर्गीय हरि नारायण आपटेजीने इस तरह महाराष्ट्र जन-जीवनसे एकरूपता स्थापित करनेका एक नया उपक्रम उपन्यास-क्षेत्रमे कायम किया। उनके बाद वा. म. जोशीने 'रागिणी' में तत्वज्ञानपर चर्चा की। तत्वज्ञानकी चर्चा प्रायः रूक्ष एवं नीरस होती है, लेकिन वा. म. जोशीने उसे अपने उपन्यासोंमें सरस बना दिया है। उनके उपन्यासोमे हमें मराठी उपन्यासोके एक विशिष्ट पहलूके दर्शन होते है। ज्ञानकोषके प्रणेता स्वर्गीय केतकरजीने भी इसी दृष्टिको सामने रखकर उपन्यास लिखे। उनकी 'ब्राह्मण कन्या' हमें इस तथ्यकी प्रतीति करवाती है। यह उपन्यास अकुलीनोंकी सन्तति तथा तत्सम्बन्धी सामाजिक समस्यापर आधारित है। उसमें केतकरजीने नई मनुस्मृतिकी आवश्यकतापर भी जोर दिया है।

उपन्यासोंकी यह शैली सन १९२० के बाद प्रचलित हो रही थी। उसी समय पद्मभूषण प्रा. ना. सी. फडकेका उपन्यास-क्षेत्रमें प्रादुर्भाव हुआ। 'अल्लाहो अकबर' उनका पहिला उपन्यास है। वह ऐतिहासिक था। कई पाठकोंको उसने श्री हरिभाऊ आपटेके उपन्यासोंका स्मरण करा दिया। 'अल्लाहो अकबर' के बाद उनके 'दौलत' को विलक्षण ख्याति प्राप्त हुई। किसी भी एक सूत्रको लेकर उसके सहारे मनुष्य स्वभावकी क्रिया-प्रक्रियाओंको अत्यन्त मनोज्ञतासे चित्रित करना श्री फडकेजीकी विशेषता है। वे अपने उपन्यासोंमें लालित्य, स्वभाव-चित्रण, संघर्ष, निष्पत्ति, रसाविष्करण, वातावरण-सृष्टि आदि बड़ी सुघड़तासे लाते है। उनके

अब तक ५० के ऊपर उपन्यास छप चुके हैं। अब भी उनकी कलम चल रही है। 'दौलत' की तरह ही 'प्रवासी', 'जादूगर', 'शाकुन्तल', 'अटके पार' (अटकके आगे), 'जेहलम' (झेलम) इत्यादि उनके उपन्यास अपने विशिष्ट गुणोंके कारण रसिकोंके मनोंको अब भी मोहित करते रहते है। फडकेजी रसिक है और कला-प्रेमी भी। उनकी ये विशिष्ट वृत्तियाँ उनके उपन्यासोंमें पूर्णरूपेण प्रतिबिम्बित होती दिखाओ देती है।

पद्मभूषण फडकेजीके समान श्री. वि. स. खांडेकरजीने भी उपन्यासके क्षेत्रमें अपने लिए एक निराला स्थान बना लिया है। उनके 'उल्का', 'दोन ध्रुव' (दो ध्रुव), 'हिरवा चांफा' (हरा चंपा*), 'क्रौचवध', 'ययाति' आदि उपन्यासोंने खब धूम मचाई। मूल प्रकृतिसे खांडेकरजीके उपन्यास तत्व-प्रधान है। जीवनकी विविध समस्याओंको स्थायी भाव बनाकर उनपर वे अपने उपन्यासकी इमारत खड़ी करते हैं। जीवनके सम्यक् दर्शनपर खांडेकरजीका अधिक जोर है।

उपन्यास-क्षेत्रमें श्री. फडके तथा खांडेकरजीके समकक्ष श्री. ग.त्र्यं. माडखोलकरजीका भी नाम आता है। माडखोलकरजीका पहला उपन्यास 'मुक्तात्मा' सन १९३३ मे प्रकाशित हुआ। उनके उपन्यासोंमें विभिन्न राजनैतिक विचारधाराओंके प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर होने लगे। श्री. माडखोलकरजीकी विशेषता यह है कि विभिन्न राजनैतिक विचारधाराओंके प्रतिबिम्ब देते समय उन्होंने रचनाके अन्य अंगोंको भी ठीकसे सम्भाला है। उनके 'मुक्तात्मा', 'कान्ता', 'मुखवटे' (नकली चेहरे), 'प्रमद्वरा', 'भंगलेलें देऊळ' (टूटा हुआ मन्दिर), 'चन्दनवाडी' इत्यादि उपन्यास अत्यन्त विलोभनीय हैं।

मराठी उपन्यासोंमें सामाजिक समस्याओं तथा आंचलिकताको विशेष रूपसे यदि किसीने प्रश्रय दिया है, तो वे है श्री. बा. भ. बोरकर। उनका 'भावीण' (देवदासी) गोमन्तकीय वातावरणसे रंगा हुआ है और वहाँके एक ज्वलन्त प्रश्न—देवदासियोंकी समस्या—को उसमें उन्होंने उभारा है। उनके इस उपन्यासमें हम कलात्मकता, व्यक्ति-रेखाएँ, आंचलिकता, अमूर्त प्रश्नका साकारीकरण, लालित्य आदि कई पहलुओंको देख सकते है।

श्री बोरकरजीके कदमोंपर कदम बढ़ाते हुए श्री. ना. पेडसेजीके उपन्यास आए। उनके 'गारंबीचा बापू', 'एल्गार', 'हद्दपार' आदि उपन्यासोंमें कोंकण (पश्चिमी महाराष्ट्रका सागरवर्ती प्रदेश) सजीव हो उठा है। उनके पात्रों एवं वातावरण-सृष्टिमें सच्चा कोंकण हमे साकार होते दिखाई देता है।

***हरा चंपा**—पश्चिम महाराष्ट्रके कोंकण (रत्नागिरी) प्रदेशमें हरे रंगके फूलोंवाला भी चंपा होता है। चूँकि वह अत्यन्त सुन्दर और दुर्मिल होता है, इसलिए उसे मराठी साहित्यमें सुभग रोमांस एवं शृंगारका प्रतीक माना जाता है। —अनु०

इन सबसे अलग ढंगके उपन्यासकी रचना की है, श्रीमती विभावरी शिरूरकर (सौ.* मालतीबाई बेडेकर) ने। उपन्यासका नाम है—'बळी' (शिकार)। यह जरायम पेशा जमातपर आधारित है। उसमें जिस सत्यका उद्घाटन किया गया है, वह वास्तववादी और यथार्थ है, पर साथ ही अत्यन्त कलात्मक।

आज मराठी उपन्यासने सब ओर अपने क्षेत्रका विस्तार कर लिया है। समाजके सब स्तरोंको वह छू चुका है। पूरे महाराष्ट्रमें उसकी यात्रा हो चुकी है। उसने अनेक व्यक्ति-रेखाओंको ध्यानपूर्वक निरखा है और उन्हें साकार रूपमें प्रस्तुत किया है। अनेकों समस्याओंका हल उसने तेजीसे ढूंढ़ निकालनेकी कोशिश की है। आश्चर्यकी बात यह कि इतना सारा उसने सिर्फ ६० सालमें किया है।

इस सन्दर्भमें हम सर्वश्री वरेरकर, पु. द. देशपांडे, वि. वि. बोकील, वि. वा. हडप, नाथ माधव, ग. ल. ठोकळ, साने गुरुजी, र. वा. दिवे, गो. नी. दांडेकर आदि अनेकों लेखकोंके नाम गिना सकते हैं, जिन्होंने आजके मराठी उपन्यासको रूपरंग दिया है।

काव्य :

'केशवसुत' (कृष्णाजी केशव दामले)के काव्यसे मराठी काव्यमे अर्वाचीन और प्राचीनका भेद शुरू हुआ। 'केशवसुत' के काव्यने मराठी काव्य-धारामें एकदम युगान्तर उपस्थित कर दिया। उनके बाद जो कवि हुए, उन्होंने उन्हींका अनुकरण किया। यह अनुकरण विषय और अभिव्यक्ति—दोनोंकी दृष्टिसे किया गया। अनुगामी कवि अपने आपको 'केशवसुतके सच्चे शिष्य' कहलानेमें गौरवकी अनुभूति करते थे। 'केशवसुत' की प्रसिद्ध कविता 'तुतारी' (तुरही) परसे एक 'तुतारी मण्डल' ही बना लिया गया था। मराठी काव्य-धारामें यह जो युगान्तर आया था, उसे सर्वश्री गोविन्दाग्रज (रा. ग. गडकरी), बालकवि (त्र्यं. बा. ठोमरे), रेव्हरण्ड ना. वा. टिळक आदि मान्यवर कवि-मनीषियोंने परिपुष्ट किया।

लेकिन सन् १९२० के आसपास गोविन्दाग्रज, बालकवि और टिळकका स्वर्गवास हो गया। उनके चले जानेसे मराठी काव्य-क्षेत्रमें एक बड़ी भारी कमी महसूस होने लगी।

जब सब इस कमीको महसूस कर रहे थे, तब पूनामें २३ सितम्बर १९२३ को 'रवि किरण मण्डल' के नामसे एक कवि-मण्डली बनी। इस 'रवि किरण मण्डल' में कवि माधव जूलियन (मा. त्र्यं. पटवर्धन), गिरीश (शं. के. कानेटकर),

---

*सौ.—महाराष्ट्रमें विवाहिता एवं सधवाके पहले 'सौभाग्यवती' लिखा जाता है। 'सौ.' उसीका संक्षेप है। —अनु०।

यशवन्त (य. दि. पेण्ढरकर), ग. त्र्यं. माडखोलकर, श्री. बा. रानडे, सौ. मनोरमाबाई रानडे, श्री दिवाकर (शं. का. गर्गे), वि. द. घाटे तथा द. ल. गोखले थे। अर्वाचीन मराठी-काव्यके इतिहासमें इस 'रवि किरण मण्डल' का काम निश्चित रूपसे बड़ा महत्वपूर्ण रहा।

मराठीके प्राचीन काव्यमें कवि अपनी भावनाओं तथा विचारोंकी अभिव्यक्ति शुद्ध रूपमें नहीं किया करते थे। तब यह मान्यता थी कि काव्यद्वारा परमेश्वरकी स्तुति ही की जानी चाहिए। इसलिए काव्यमें जो विविध रस रहा करते थे, उन सबका ध्येय अन्तमें परमेश्वरके चरणोंमें लीन होना ही रहता था। मराठी काव्य-गंगा भक्तिके घाटोंसे सुशोभित होकर बहा करती थी। 'केशवसुत' ने इस काव्य-गंगाको सीमित अभिव्यक्तिसे बाहर निकालकर विशाल मैदानोंमें प्रवाहित किया। उन्होंने आत्माभिव्यक्तिको भरपूर अवसर दिया। प्रकृतिकी ओर सुन्दरताकी दृष्टिसे देखनेकी प्रवृत्ति पैदा की। सितारके सुरोंमें मनके कोलाहलको देखा। विद्युल्लताके प्रेमको अमरत्व प्रदान किया। अरुणको सौभाग्यशाली बनाया। उनकी कवितामें एक तरफ फूलरानी (तितली) शरमाते-शरमाते मर गई, तो दूसरी तरफ एक विहंगिनीकी भीषण व करुण मृत्यु अटल हो गई। उसी अटलतामेंसे मनुष्यका न्याय किस प्रकारका होता है, यह बोल उठा।

'केशवसुत' ने मराठी काव्य-रूपका जो नूतन अविष्कार किया था, उसके विविध अंगोंको 'रवि किरण मण्डल'ने प्रकाशित किया तथा उन्हें कलाके विभिन्न रंगोंसे सँजोया, सँवारा। 'रवि किरण मण्डल' के तीन कवियोंने खण्ड-काव्यके क्षेत्रमें भी सुन्दर कार्य किया। उन्होंने अपने खण्ड-काव्योंके माध्यमसे मानव-मनकी विविध हलचलोंको आलोकित किया तथा सामाजिक समस्याओंपर प्रकाश डाला। कवि माधव जूलियनका 'सुधारक', गिरीशका 'अभागी कमल' (अभागिनी कमला) और यशवन्तका 'बन्दीशाळा' (जेलखाना) इसके प्रमाण है। ये काव्य मराठी कविताको सुशोभित करनेवाले सुन्दर अलंकार है।

'रवि किरण मण्डल' के कवियोंकी कविताएँ मुख्यतया भावना-प्रधान है। स्वरूपसे वे भले ही स्फुट–मुक्तक हों, लेकिन उनमें जो भावनाएँ है, वे खण्डित नही है। मण्डलके सदस्योंने अपनी भावपूर्ण कविताओंको पारिजातकके फूलोंके सघन छिड़कावके समान बगराया है। उन कविताओंको बहुत लोकप्रियता मिली। मराठी काव्य सच्चे अर्थमें लोकाभिमुख बना। काव्यके सम्बन्धमें जो भ्रामक कल्पनाएँ थीं, वे भी दूर हो गई। इन कवियोंने गेयताकी दृष्टिसे गीतों तथा छन्दोंमें नए-नए प्रयोग प्रचलित किए, और इस तरह काव्य-विधाको सहज एवं सुलभ बना दिया। काव्य-लेखनकी दृष्टिसे मण्डलद्वारा जो काम किया गया था, उसका प्रभाव आज भी मराठी कवितामें दृष्टिगोचर होता है, उसकी परम्परा आज तक चली आ रही है।

'रवि किरण मण्डल' के प्रभावशाली कार्यबने कई अंकुरोंको उभारा। कविताके दिन फिरे और इसीलिए 'र' के नीचे 'र' तथा 'ट' के नीचे 'ट' जोड़नेवाले बहुतसे तुक्कड़ोंका उदय सम्भव हुआ। अर्थात् ऐसे कवियोंकी पोल-पट्टी भी तुरन्त ही खुल गई।

महाराष्ट्रकी ग्रामीण भाषामें तथा नागर-भाषामें संयोजन तथा गठनकी दृष्टिसे काफी अन्तर है। जिसे 'कुणबाऊ भाषा' (किसानोंकी भाषा) कहते हैं, उसमें भी कविता रचनेकी प्रथाका प्रचलन 'रवि किरण मण्डल' ने किया। मन करता है कि कवि यशवन्त और गिरीशके काव्योंको आज भी, चालीस साल बाद भी, बार-बार पढ़ा जाए। ग्रामीण भाषामें काव्य-रचनाका सुन्दर ललामभूत आविष्कार 'रवि किरण मण्डल' द्वारा ही किया गया। उसी परम्परामें कवि श्री ग. ल. ठोकळकी 'मीठ भाकर' (नमक-रोटी) कविता बड़ी सुन्दर उतरी है।

इसी काल-खण्डमें, सन् १९२० से १९४० के बीच, कविश्री केशवकुमार (आचार्य प्र. के. अत्रे) ने उपहास व विनोदपर आधारित विडम्बनात्मक पैरोडियाँ (Parody) लिखनी शुरू कीं। उनके 'झेंडूची फुलें' (गेंदेके फूल) अभी भी उतने ही ताजे और मस्त हैं।

'रवि किरण मण्डल' ने काव्य-रचनाके माध्यमके रूपमें सुनीतों तथा गजलोंका प्रयोग किया और उन्हें मराठी काव्यमें प्रस्थापित कर दिया। परम्पराओंसे चले आनेवाले तथा सीमाओंमें बुरी तरहसे घिरे हुए काव्य-रचना-प्रकारोंको उसने शिथिल बना दिया और शब्द-सौन्दर्य तथा भाव-सौन्दर्यकी दृष्टिसे मराठी काव्यमें बहुत बड़ी सम्पदाका निर्माण किया।

इस तरहसे इस काल-खण्डमें सामाजिक प्रश्न, प्रेमकी वास्तविक स्वरूप-निष्पत्ति, अपने अधिकारोंकी सार-सम्भाल, ग्रामीण-जनोंकी भावाभिव्यक्ति, हास्य तथा विडम्बन, खण्ड-काव्य आदिकी दृष्टिसे काव्यके विविध दालान सुसम्पन्न बने।

अर्वाचीन मराठी काव्य-गंगामें विदर्भसे सन् १९३२ के आसपास कवि अनिल (आ. रा. देशपाण्डे) की काव्य-धारा आ मिली। उन्होंने अपनी 'फुलवात'* प्रकाशित की। अँग्रेजी साहित्यमें मुक्त छन्द नामक जो काव्य-प्रकार शुरू हो गया था, उसका अनुकरण मराठीमें कवि अनिलने किया। लेकिन इस अनुकरणमें उन्होंने मराठी काव्यके मराठीपनको बड़े जतनसे सम्भाला। 'आणि बीजें पेरा! नव्या आशा धरा!' (अधिकाधिक बीज बोओ, नई-नई आशाएँ करो)—यह बात उन्होंने अपनी कविताके माध्यमसे बार-बार दुहराई है।

---

*'**फुलवात**'—कवि अनिलका एक काव्य-संग्रह। 'फुलवात' का अर्थ होता है—घीमें डुबाई हुई फूलके आकारकी कपासकी बत्ती, जिससे देवताकी आरती उतारी जाती है। —अनु०।

जैसे विदर्भसे कवि अनिलका काव्य-प्रवाह आया, वैसे ही मध्य भारतसे कवि भा. रा. ताँबेजीका आया। ताँबेजीकी कविताओंकी साज-सज्जा विशिष्टतापूर्ण है। उनके भावगीतों* को संगीत-कलाकी पार्श्वभूमि प्रदान की गई है। इन भावगीतोंमें काव्यने रागदारी और तालके साथ-साथ भाव-नृत्य किए हैं। इस काव्य-प्रकारने मराठी कवियोंको विलक्षण रूपसे मोहित कर लिया। इसीलिए उससे जो धारा चली, उसको मराठी समीक्षक 'ताँबेजीका सम्प्रदाय' के नामसे पुकारते हैं।

कवि बा. भ. बोरकर, ताँबेजीके प्रशंसकोंमेंसे हैं। इस अपने प्रिय कविपर उन्होंने 'कविवर भास्करास' (कविवर भास्करजीको) नामक कविता लिखी है। ताँबेजीकी कवितामें जो गेयता, कोमलता तथा माधुर्य है, उसकी छटा हमें बोरकरजी के काव्यमें भी दृष्टिगोचर होती है। बा. भ. बोरकर गोमन्तकीय (गोआके) हैं, इसलिए हमें उनके काव्यमें गोमन्तककी सम्पदाके दर्शन होते हैं। उनके काव्य-संग्रह 'दुध सागर' (क्षीर समुद्र) का 'स्वागत' करते हुए आचार्य काका कालेलकरने स्पष्ट रूपसे लिखा है—'मुझे यदि कहीं गोवाकी विशिष्टता दिखी है, तो वह युवक कवि श्री बोरकरजीके काव्यमें ही।'

कविताकी शक्ति अलौकिक होती है, वह शक्ति अपने आपको प्रतीत करवाती है और उसके कारण समाजकी विचारधाराको भी परिवर्तित होना पड़ता है—ये ज्वलन्त विचार कवि कुसुमाग्रज (वि. वा. शिरवाडकर) द्वारा अपनी कविताके माध्यमसे प्रकट किए गए हैं। उनकी कविता 'क्रांतीचा जय जयकार' (क्रान्तिका जय-जयकार) ने महाराष्ट्रके सब छोटे-बड़े मनोंको उद्भासित कर दिया था। कुसुमाग्रजके काव्यमें विलक्षण ओज है। उन्होंने सामाजिक विचारतत्वोंके लिए अपने काव्यको माध्यम बनाया। कचरा भी उनकी नजरसे नहीं छूटा। कुसुमाग्रजने नए विचारोंका प्रसार मराठी-काव्यके माध्यमसे किया है।

इसके बादका काल है, नव-काव्यका। अभी तक प्राचीन मराठी काव्य और अर्वाचीन मराठी काव्य, यही भेद किए जाते थे। सन् १८८५ वह सीमा-रेखा है, जहाँसे दोनों काव्य अलग-अलग होते थे; क्योंकि उसीके आसपास कवि 'केशवसुत' ने अपनी काव्य-रचनाका प्रारम्भ किया था। अब अर्वाचीन मराठी काव्य और नव-काव्य, ये शब्द-प्रयोग रूढ़ हो गए है। ऐसा माना जाता है कि श्री बा. सी. मर्ढेकरकी काव्य-रचनासे नव-काव्यका प्रारम्भ हुआ।

'नव काव्य' नाम इसलिए चला कि उस प्रकारकी कविताओंमें जो नवीनता है, उसकी प्रतीति अन्य लोगोंको भी हो जाए। वर्ना इस शब्दके प्रयोगके लिए कोई आग्रह नहीं था। यह नव-काव्य, पुराने काव्यकी अपेक्षा भिन्न है (पुरानेका अर्थ है—

---

*भावगीत—प्रगीतों (Lyric) का एक मराठी काव्य-प्रकार।—अनु०।

अर्वाचीन मराठी काव्य ही, प्राचीन मराठी काव्य नहीं)। यह स्पष्ट दिखाई देता है कि नव-काव्यमें और जो पुराना हो गया है, उस अर्वाचीन मराठी काव्यमें काव्य प्रकारकी दृष्टिसे अन्तर है। इस अन्तरको सामान्य पाठक भी देख सकता है। लेकिन इस नवीनताका निश्चित स्वरूप क्या है, इसको लोग समझ नहीं पाते। उसकी यह दुर्बोधता ही नव-काव्यका प्रमुख लक्षण बन बैठी है। नव-काव्यका 'उन्हाचा पक्षी' (धूपका पंछी) आँखके सामने नहीं आता, 'पांखरें थेंबाची' (बूँदोंके पक्षी-शावक) दिखाई नहीं देते, 'सांवल्यांच्या चिमण्या' (छायाओंकी चिड़ियाँ) उड़ती हुई नही मिलतीं और 'ओलेती मार्दव' (भींगा हुआ मार्दव) का अनुभव नहीं होता। ये नई प्रतिमाएँ है। नव-कवि शायद यह अपेक्षा रखता है कि काव्य-रसिक स्वयं ही उनका आकलन कर ले। कुछ आलोचक इन नूतन प्रतिमाओंका समर्थन करते है। लेकिन सामान्य पाठक इन प्रतिमाओंके सामने हताश हो जाता होगा। कारण सीधे-सादे, सरल शब्दोंसे और वैसे ही अर्थोंसे जिनकी भावनाएँ आन्दोलित-उद्वेलित हो उठती है, ऐसे बहुसंख्यक रसिक-गणोंको यह नव-काव्य नीरस लगता है; सर्वसाधारण जनताकी तो बात ही क्या है?

नव-काव्य धाराके साथ-साथ हमें मराठी कवयित्रियोंकी विरोधी काव्य-धारापर भी ध्यान देना पड़ेगा। सौभाग्यवती संजीवनी मराठे, शांता शेळके, इंदिरा संत आदि कवयित्रियोंने जिन काव्योंकी रचना की है, वे सब अर्वाचीन मराठी काव्यके ढंगपर ही हैं। मराठी महिलाओंने जिन भाव-स्वप्नोंको संजोया है और जो भाव-पुष्प चित्रित किए है, वे नितान्त रमणीय है। उनमें हमें संसारके सुख-दुखकी सहज अभिव्यक्ति दृष्टिगोचर होती है। इन कवयित्रियोंके काव्य नव-काव्यसे कतई अछूते रहे हैं।

आज मराठी कविता प्रचुरता एवं विविधताकी दृष्टिसे समृद्ध एवं श्री-सम्पन्न है। जगह-जगह कवि-सम्मेलन होते हैं। उनमें कविता-पाठ होता है। प्रौढ़ कवियोंके साथ-साथ उदयोन्मुख कवि भी अपनी कविताओंको हिम्मत और गर्वके साथ प्रस्तुत करते हैं। महाविद्यालयोंकी साहित्य-समितियाँ भी इस काममें पीछे नहीं है। 'गीत रामायण' के रचयिता ग. दि. माडगूळकर, मंगेश पाडगाँवकर, वि. म. कुलकर्णी, सदानन्द रेगे आदि कवि भी मराठी काव्यको समृद्ध कर रहे है।

यह सब देखकर निस्सन्देह कहा जा सकता है कि मराठी काव्यका आगामी कल बहुत ही उज्ज्वल है।

नाटक :

नाटक महाराष्ट्रका प्रिय विषय है। महाराष्ट्रीय मन नाटकके बारेमें एक विलक्षण समीपताका अनुभव करता है। मराठी भाषामें नाटक-रचना १९ वीं सदीके उत्तरार्द्धसे शुरू हुई। इस प्रारम्भिक कालमें स्वर्गीय श्री देवलजी तथा किर्लोस्करजीने मराठी नाटकको सुघड़ रूप प्रदान किया। उसके बाद कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकरने उनको माध्यमके रूपमें प्रयुक्त किया। पौराणिक दिखनेवाले अपने "कीचक वध" के जरिए उन्होंने राजनैतिक विचारधाराको रंगभूमिपर साकार बनाया। श्री देवलके "शारदा" ने कुमारी कन्याके साथ वृद्ध विवाहके घिनौनेपनका स्पष्ट रूपसे पर्दाफाश कर डाला। इस तरह कुछ ही समयके अन्दर मराठीका नाट्य-क्षेत्र वैभव-सम्पन्न बनने लगा था।

बीसवीं सदीके प्रारम्भमें श्री खाडिलकर एवं श्रीयुत राम गणेश गडकरीके नाटकोंका महाराष्ट्रपर अद्भुत प्रभाव हुआ। आज भी महाराष्ट्रके निवासी उन नाटकोंको उसी तन्मयतासे देखते हैं। "मानापमान", "सौभद्र", "एकच प्याला" (एक ही प्याला) आदि उनके नाटक संगीतमय हैं। अपने नाट्योचित गुणोंके कारण ये नाटक अत्यधिक लोकप्रिय सिद्ध हुए, इसमें कोई सन्देह नहीं। लेकिन उन्हें लोकप्रिय बनानेके काममें बाल गंधर्व*, भाऊराव कोल्हटकर तथा गोविन्दराव टेंबे जैसे श्रेष्ठ गवैयोंका परिश्रम भी कारणीभूत हुआ है। "एकच प्याला" शराबके दुष्परिणामोंको उद्घाटित करनेवाला अत्यन्त प्रभावपूर्ण शोकान्त नाटक है। गडकरीजीका "एकच प्याला" "शारदा" के बाद सामाजिक नाटकोंमें नई मञ्जिलकी निशानी बन बैठा है। उनके दूसरे सामाजिक नाटक "भावबन्धन" तथा "प्रेम-संन्यास" भी बहुत लोकप्रिय सिद्ध हुए।

सन् १९२० के बाद भी उपर्युक्त नाटक रंगभूमिपर चमक रहे थे। तब तक वरेरकरजीके नाटक भी स्टेजपर आने लगे थे। यूँ वरेरकरजीका पहला नाटक 'कुञ्ज विहारी' सन् १९०८ में लिखा गया है। यह कहना कि वरेरकरजीने लगभग सब समस्याओंपर नाटक लिखे हैं, अधिक अतिशयोक्ति नहीं होगी। भारतके विभाजनपर अभी-अभी उन्होंने "अपूर्व बंगाल" लिखा। उनके "हाच मुलाचा बाप" (यही लड़केका पिता है), "सोन्याचा कळस" (सुवर्ण कलश), "करीन ती पूर्व" (जिसे कहूँगा वही पूर्व होगा) आदि नाटकोंसे मराठी रंगमंचकी शोभा-वृद्धि हुई है।

वरेरकरजीके बाद आचार्य प्र. के. अत्रेका नाम आता है। सच तो यह है कि अत्रेजीके लिए 'वरेरकरजीके बाद' यह शब्दावली उतनी ठीक नहीं है; सिर्फ नाम

***बाल गंधर्व**—महाराष्ट्रके अत्यन्त प्रसिद्ध अभिनय-निपुण गायक नट। अपने अलौकिक संगीत एवं मार्दवयुक्त कण्ठस्वरके कारण ये 'बाल गंधर्व' के नामसे महाराष्ट्र भरमें जाने जाते हैं। असली नाम है—नारायण श्रीपाद राजहंस।—अनु०

गिनाते-गिनाते प्रवाहमें वह प्रयुक्त हो गई है। अंग्रेजीने मराठी स्टेजमें नए प्राणोंका सञ्चार किया। "साष्टांग नमस्कार", "भ्रमाचा भोपळा" (भ्रमकी पिटारी), "लग्नाची बेडी" (विवाह-शृंखला), "मी उभा आहे" (मैं चुनावमें खड़ा हूँ), "कवड़ी चुंबक" (मक्खीचूस), "उद्यांचा संसार" (कलकी गृहस्थी) आदि उनके नाटक बहुत प्रसिद्ध हुए। इनमें सामाजिक समस्याओंका चित्रण एवं निराकरण तो है ही, लेकिन साथ-ही-साथ मनुष्य स्वभावकी असंगतियों और झकों (fads) पर विनोद एवं उपहासके माध्यमसे दारुण आघात भी किए गए हैं।

श्री मो. ग. रांगणेकर सन् १९४१ में "आशीर्वाद" को लेकर मैदानमें आए; लेकिन उनका विशेष प्रसिद्ध नाटक 'कुलवधु'* है। रांगणेकरजीने अपने नाटकों द्वारा मराठी बोलपटों (Talkies) से सफलतापूर्वक टक्कर ली। इसके लिए उन्हें नाटकोंकी रचनामें कुछ परिवर्तन करने पड़े। तदर्थ उन्होंने "नाट्य निकेतन" नामक संस्था बनाई। उसीके जरिए उनके नाटक रंगमंचपर आए। उसने नाटकोंके अलावा एकांकिकाएँ भी प्रस्तुत की हैं।

आजकल नाटकोंमें नए-नए तन्त्रोंका अवलम्बन होने लगा है। प्रकाश योजना, पार्श्वसंगीत, नेपथ्य, रंगमंचकी सजावट आदिकी सहायतासे कथानकके 'रस' को रंगमंचपर साकार किया जाता है।

प्रा. वसन्त कानेटकरजी द्वारा लिखित "वेड्याचं घर उन्हांत" (पागलका घर धूपमें), "प्रेमा तुझा रंग कसा" (प्रेम तेरा रंग कैसा है?) नाटक आज युगान्तरकारी सिद्ध हो रहे हैं। अब स्टेजपर मानव-मनका विश्लेषण किया जाने लगा है और उसकी सूक्ष्म छटाओंका चित्रण होने लगा है। इस सम्बन्धमें प्रोगेसिव्ह ड्रेमेटिक असोसिएशनके आचार्य भालबा केळकरजीने काफी मेहनत की है।

प्रा. वसन्त कानेटकरके साथ-साथ प्रा. पु. ल. देशपांडेजीका भी नामोल्लेख आवश्यक है। देशपाण्डेजीका दिग्दर्शक, कथा-लेखक, गीतकार, अभिनेता आदि दृष्टियोंसे चलचित्र जगतसे भी घनिष्ठ सम्बन्ध आया है। उनके इस सम्बन्धसे मराठी स्टेज भी लाभान्वित हुआ है। "तुझे आहे तुजपाशी" (तेरा है तेरे पास) तथा "अमलदार" उनके अत्यन्त लोकप्रिय नाटक है। इनमें मनुष्य स्वभावके अनेकों मार्मिक चित्र बड़ी सुन्दरतासे खींचे गए है। विशेष बात यह है कि उनके द्वारा एक पात्रवाले कई नाटक मराठी स्टेजपर लाए गए।

---

*संस्कृत तथा हिन्दी शब्दोंके आदि, अन्त या मध्यमें स्वर जैसे ह्रस्व या दीर्घ आते है वैसे ही वे मराठीमें भी रहें, ऐसा नियम नहीं है। इस दृष्टिसे कुछ शिथिलता मराठीमें चली आती है। —अनु०।

"बटाट्याची चाळ" (श्री बटाटेकी बिल्डिंग)* नामक नाटकमें वे स्वयं अभिनेता बनते है और मानव स्वभावकी असंगतियोंका दिग्दर्शन कराते हुए पूरे तीन घण्टे तक प्रेक्षकोंको बाँधे रखते है।

इस प्रकार मराठी नाटक अपने क्षितिजोंको विस्तृत कर रहे है। इसमें वर्तकजी, स्व. माधवरावजी जोशी, स्व. वीर दामनरावजी जोशी, स्व. नागेश जोशी आदिके प्रयत्न भी उल्लेखनीय है। उनके क्रमशः "अंधळ्यांची शाळा" (अन्धोंका स्कूल), "म्युनिसिपालिटी", "रणदुंदुभी", "देव माणूस" (साधुमना) नाटक विशेष परिणामकारक सिद्ध हुए।

लघुकथा (कहानी) :

अँग्रेजी साहित्यांग (Short Story) परसे मराठीमें 'लघुकथा' आई है। गल्प, कथा, कहानी सुननेका चाव मनुष्यमे जन्मसे रहता है। ऐसी न मालूम कितनी कथाएँ कालके पेटमे अबतक समा गई होंगी। लिखित साहित्य प्रकारके रूपमे मराठीमे उनका प्रचलन पिछली शताब्दीके अन्तके वर्षोमे हुआ। उस समय ह. ना. आपटेजीकी कहानियोंको विशेष लोकप्रियता प्राप्त हुई थी।

सन् १९२० के बाद लघुकथाओंका क्षेत्र अधिक वैभव-सम्पन्न बनने लगा। प्रा. फडके, खांडेकर, य. ग. जोशी, वि. वि. बोकील, ह. र. कवठेकर, श्री. म. माटे इत्यादि कहानी-लेखकोंने अपनी कथाओंमे मानव-मनका अत्यन्त बारीकीसे चित्रण किया। उनमे उन्होंने अपने आसपासके वातावरणको भी अत्यन्त कुशलतासे प्रतिबिम्बित किया है तथा जीवनकी झाँकी सफलतापूर्वक प्रस्तुत की है। अब कहानियाँ काल-क्रमानुसार नहीं, रस परिपाककी दृष्टिसे कही जाने लगी।

कुछ समय बाद इस क्षेत्रमे भी नवीनताका पदार्पण हुआ। ये नव-कथाएँ नवकाव्यका-सा ही रूप-रंग लेकर आई। अरविन्द गोखले तथा गंगाधरजी गाडगीळ उनके विशेष प्रवर्तकोंमेंसे रहे। पं. महादेव शास्त्री जोशीकी कौटुम्बिक ममतासे परिपूर्ण एवं भावपूर्ण कहानियाँ इन नव-कथाओंकी विरोधी पार्श्वभूमिमें अधिक उठावदार दिखाई देती हैं। और अब तो ऐसा लगने लगा है, मानों उन्हींका प्रवाह अधिक तीव्र एवं प्रभावशाली बनेगा।

मराठी कहानियोंके एक दूसरे विशिष्टतापूर्ण पहलूके दर्शन हमें ग्रामकथाओंमें होते हैं। श्री व्यंकटेश माडगूळकर, ग. ल. ठोकळ, र. वा. दिघे, द. मा. मिरासदार आदि कथाकारोंने ग्रामीण जीवनको बड़ी सचाईसे अपनी कहानियोंमें उतारा है। देहातके व्यक्ति, उनका वातावरण, उनकी भावनाएँ, उनके संघर्ष आदि

---

*चाळ—किरायेदारोंके लिए बनाए गए एक-से घरोंकी पट्टीको कहते हैं। इसमें कई मजलें भी रह सकते है। बटाटेका मराठीमें साधारण अर्थ है—'आलू।' —अनु०

सब शहरसे अलग प्रकारके होते हैं। इन कथाकारोंको इसका श्रेय है कि उन्होंने उनका ठीकसे आकलन किया और उन्हें साकार रूपमें प्रस्तुत किया।

मराठीमें आज अनेक कहानी-लेखक हैं। सबका नामोल्लेख यहाँ नहीं हो सका है। फिर भी निःसन्देह उन सबने मराठी लघुकथाको बनाया, सँवारा है और वह भी ४०–५० सालके अल्प समयमें! मराठी पत्र-पत्रिकाओंने लघुकथाओंको प्रकाशितकर उन्हें ठीक-ठीक प्रोत्साहित किया; इसलिए लघुकथाकी अभिवृद्धिमें मनोरञ्जन, रत्नाकर, किर्लोस्कर, वसन्त, सत्यकथा आदि पत्रिकाओंका भी श्रेय है।

निबन्ध :

निबन्ध-लेखन मराठी साहित्यका एक श्रेष्ठ अंग है। पिछली शताब्दीके उत्तरार्द्धमें स्व. विष्णुशास्त्री चिपलूणकर, लोकमान्य टिळक तथा आगरकरजीने उसकी मजबूत नींव बना दी थी। उनके बाद श्री शिवरामपत परांजपे, न. चि. केळकर आदिने उस कामको आगे बढ़ाया।

सन् १९२० के बाद वा.म. जोशी, श्री. म. माटे, पु. ग. सहस्रबुद्धे, द. के. केळकर, प. सातवळेकर, आचार्य, शं. द. जावडेकर इत्यादि विख्यात निबन्ध-लेखकोंने निबन्ध-रचनाको ऐश्वर्यवान बनाया। उनके निबन्ध बुद्धिवादसे ठसाठस, वस्तुनिष्ठ दृष्टि-कोणवाले, आग्रहपूर्ण प्रतिपादनसे युक्त एवं ऐतिहासिक पार्श्वभूमिमें लिखे हुए होते हैं।

एक दौड़ती-सी सरसरी निगाहसे यह अर्वाचीन मराठी साहित्यका परिचय है। इसमें जिनका उल्लेख नहीं आया है ऐसे अनेक छोटे-मोटे लेखक हैं जिनकी कृतियोंसे मराठी साहित्य इतिहास सिरजा जा रहा है। आज मराठी साहित्य सर्वांगीण दृष्टिसे विकसित हो रहा है, उसमें विविधता और विपुलता दोनों हैं। उसके पीछे ज्ञानेश्वर* महाराजकी प्रेरणा है। उन्हींके शब्दोंमें :—

माझा मराठाचि बोल कौतुकें।
परि अमृतातेंहि पैजा जिंके।
ऐसी अक्षरें रसिकें। मेळवीन॥

"यह प्राकृत भाषा (मराठी) का मेरा कथन खेल-खेलमें अमृतको भी शर्तिया जीत लेनेवाला है; ऐसे ही रस भरे शब्दोंकी मैं योजना करूँगा।"

—(ज्ञानेश्वरी, अध्याय ६, श्लोक १४।)

● ● ●

---

*ज्ञानेश्वर— (सन् १२७५ से १२९६) मराठीके सर्वश्रेष्ठ सन्त, योगी, पण्डित एवं दार्शनिक। अनेकों महान् ग्रन्थोंके प्रणेता। गीतापर आधारित आपकी 'भावार्थ दीपिका' सम्पूर्ण महाराष्ट्रमें 'ज्ञानेश्वरी' के नामसे मानी, पूजी जाती है। सदियोंसे उसने महाराष्ट्र जन-मनको अभूतपूर्व ढंगसे प्रभावित किया है। तत्वज्ञानके अलावा वह उत्कृष्ट काव्य एवं साहित्य भी है। —अनु०।

यशवन्त दिनकर पेण्ढरकर

[कवि-परिचय]

यशवन्त दिनकर पेण्ढरकर

• • •

दऱ्याखोऱ्यांतला आला कवि हा खास दर्बारा।
मराठ्यांच्या महालक्ष्मी तुला घे शाहिरी मुजरा॥

[सह्याद्रिकी घाटियोंका यह कवि तुम्हारे खास दरबारमें आया है। ऐ महाराष्ट्रकी महालक्ष्मी, अपने इस शाहीर (चारण) का प्रणाम स्वीकार कर!]

महाराष्ट्र-कवि यशवन्तजीका पूरा नाम है—यशवन्त दिनकर पेण्ढरकर। उनका जन्म ९ मार्च १८९९ को हुआ। उनके पिताजी सातारा जिलेके लोकल-बोर्डमें प्राथमिक शिक्षक थे। उनकी उस नौकरीके कारण यशवन्तजीकी किशोरावस्थाका काल सातारा जिलेमें ही व्यतीत हुआ। उनका केन्द्र-स्थान था चाफळ। यहाँ उनके हृदय एवं मस्तिष्कपर कई अच्छे संस्कार पड़े। यहीं उनके भावनाप्रधान तथा संस्कारक्षम मनपर समर्थ रामदास स्वामी और लोकमान्य टिळकके विचारोंकी छाप पड़ी।

कवि यशवन्तके पिता प्राथमिक शिक्षक थे, इसलिए उनकी आर्थिक स्थितिके बारेमें अलगसे कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं है। स्वयं कविने ही कहा है :—

दारिद्र्य माझिया घरांत विस्वें अठरा।
हा पिटति नगारा लोक सदा परभारा॥

[मेरे घरमें अठारह बिस्वा दारिद्र्य है, यह बात स्वयं लोग ही ढिंढोरा पीट-पीटकर कह देते हैं।]

निम्न मध्यवर्गके परिवारके भाग्यमें जो-जो सुख-दुख आते हैं, उन सबको यशवन्तजीने भोगा है। फिर भी वे 'अमीर' थे। यह अमीरी उन्हें अपने पिताजीसे प्राप्त हुई थी। यशवन्तजीके पिताजी बहुश्रुत थे। उनसे सुसंस्कारोंका अपरिमित भण्डार यशवन्तजीको मिला। यशवन्तजी इस प्रकारकी 'अमीरी' में पले और बड़े हुए।

यशवन्तजीकी प्राथमिक शिक्षा देहातमें ही हुई; किन्तु माध्यमिक शिक्षाकी सुविधा वहाँ न होनेके कारण उसके लिए उन्हें कऱ्हाड जाना पड़ा। कऱ्हाडके ऐंग्लो-वर्नाक्युलर स्कूलमें अँग्रेजी चौथी (आजकी आठवीं) उनकी कक्षा तक पढ़ाई हुई। उसके बादकी पढ़ाईके लिए उन्हें सांगली जाना पड़ा।

'सांगली हाईस्कूल' में उनका नाम दाखिल किया गया। इसी स्कूलमें गोविन्द गोपाल पाटणकर, मुजुमदार उर्फ कवि साधुदास (१८८४ से १९४७) का शिक्षकके रूपमे परिचय हुआ। इनसे यशवन्तजीने काव्यकी प्राथमिक शिक्षा प्राप्त की।

कवि साधुदास, कवि गोविन्दाग्रजकी पीढ़ीके (अर्थात् बीसवीं शताब्दिके प्रथम और द्वितीय दशकके) कवि थे। उस समय मराठी कविता भावगीतोंकी ओर मुड़ रही थी। साधुदासजीका काव्य पाण्डित्य लिए हुए था। यद्यपि यशवन्तजीने उस पण्डित कविके पास बैठकर प्राथमिक सबक सीखे, फिर भी उनकी कविताका स्वरूप भावगीतोंका-सा रहा है। यशवन्तजी मुख्यतया भावगीतकार हैं।

सांगली हाईस्कूलसे युनिवर्सिटी स्कूल फाइनल परीक्षा उत्तीर्ण करनेपर पारिवारिक जिम्मेवारी सम्हालनेकी दृष्टिसे उन्हें शिक्षा-विभागमें क्लर्कके रूपमें नौकरी करनी पड़ी। उसमें उन्हें शुरूमें उम्मीदवारके रूपमें कार्य करना पड़ा। उस नौकरीके कारण ही यशवन्तजीका आगमन पूनामें हुआ।

पूनावासियोंसे यशवन्तजीका परिचय नहीं था। उनके वहाँ पहुँचनेपर स्वयं पूनावालोंने यह परिचय प्राप्त कर लिया। यह घटना भी बड़ी मनोरंजक है।

पूना पहुँचनेपर यशवन्तजीने अपनी कविता दैनिक 'लोक-संग्रह' में प्रकाशनार्थ भेजी। उसमें जब वह छपी, तो श्री दत्तात्रय अनन्त आपटे उर्फ कवि अनन्ततनय (१८७९–१९२९) का ध्यान उसकी ओर गया। उन्होंने सम्पादकके पास जाकर इस नवोदित कविका पता पूछा। तदनन्तर वे यशवन्तजीसे उनके सदाशिव पेठके निवास-स्थानपर जाकर मिले। इस तरह कवि अनन्ततनयका कवि यशवन्तसे परिचय हुआ।

इस परिचयसे एक महत्त्वकी बात और हुई। ई. स. १९१९–१९२० में पूनामें 'महाराष्ट्र शारदा मण्डल' बना था, जिसमें कवि गिरीश, श्री. नी. चाफेकर, कवि अनन्ततनय, कवि अज्ञातवासी आदि महानुभाव थे। कवि अनन्ततनयसे यशवन्तजीका परिचय होनेके बाद यह स्वाभाविक ही था कि मण्डलके अन्य व्यक्तियोंका

भी परिचय यशवन्तजीसे धीरे-धीरे हो जाय। यह परिचय हो जानेपर 'महाराष्ट्र शारदा मण्डल' की बैठकें यशवन्तजीके घरपर ही होने लगीं। यशवन्तजीने अपने घरका एक कमरा अपने लिए रखा और दूसरा कमरा मण्डलके लिए दे दिया। इस तरह उन्होंने बड़ी कुशलतासे अपने घरमें पारिवारिक और साहित्यिक दृष्टिसे बँटवारा कर लिया। दिनभर क्लर्कके रूपमें कलम घिसनेका काम करते हुए भी उन्होंने अपनी काव्य-वृत्तिको धक्का नहीं पहुँचने दिया। उनकी काव्य-धारा निर्झरकी तरह गीतमय बनकर बहती रही।

उस शारदा मण्डलमें एक-से विचारोंके, एक-सी भावनाओंवाले तथा एक-सी जीवन-निष्ठावाले व्यक्ति इकट्ठे हुए थे। उनमें आपसमें निकटता अधिकाधिक बढ़ती गई और एक परिवारके-से स्नेह-सम्बन्ध कायम हो गए। उन पारिवारिक स्नेह-सम्बन्धोंमेंसे ही दिनांक ९ सितम्बर १९२३ को 'रवि किरण मण्डल' की स्थापना हुई। उस मण्डलमे प्रारम्भमें माधवराव पटवर्धन, श्री. बा. रानडे, सौ. मनोरमाबाई रानडे, ग. त्र्यं. माडखोलकर, कवि गिरीश, कवि यशवन्त, श्री दिवाकर और श्री म. ल. गोखले थे। बादमें जब श्री वि. द. घाटे पूना आए तो वे भी इ. स. १९२४ में उसमे सम्मिलित कर लिए गए। यशवन्तजीके जीवनमें 'रवि किरण मण्डल' एक महत्त्वपूर्ण मीलका पत्थर सिद्ध हुआ।

यशवन्तजी इस मण्डलसे बिलकुल समरस हो गए थे। आज भी उनका उससे तादात्म्य है। दिनांक १२ जुलाई १९६१ को पूनामें जो भयंकर बाढ़ आई, उसपर यशवन्तजीने एक प्रदीर्घ काव्य लिखा है। 'मुठे! लोकमाते!' (लोकमाता मुठा नदी) के नामसे वह प्रसिद्ध है। उसे यशवन्तजीने 'रवि किरण मण्डल' की छियालीसवीं किताबके रूपमें प्रकाशित किया है। इससे स्पष्ट है कि वे 'रवि किरण मण्डल' से आज भी एकरूप है।

यशवन्तजीका प्रथम काव्य-पाठ कोल्हापुरमें हुआ। ई. स. १९२१ की अप्रैलमें कोल्हापुरमे 'भारत कवि सम्मेलन' हुआ था। यद्यपि उस कवि-सम्मेलनका नाम 'भारत कवि सम्मेलन' था, फिर भी उसमें भारतका कोई प्रतिनिधि कवि नहीं सम्मिलित हुआ था, कोल्हापुरके आस-पासके ही कवि एकत्रित हुए थे। उस कवि-सम्मेलनमें भाग लेनेके लिए कवि काव्य-विहारी तथा यशवन्तजी गए थे। यशवन्तजीने तब 'देहाचा पूल' (शरीरका पुल) नामक कविता गा सुनाई थी। (प्रस्तुत कविता इस संग्रहमें सम्मिलित है।) उस कविताके सम्मानमें उन्हें वहाँ एक पदक दिया गया था। चूँकि उस सम्मेलनको कोई महत्त्व नही प्राप्त हुआ, इसलिए यशवन्तजीकी वह कविता भी विशेष नहीं गूँजी। उसके लिए उसे बड़ौदा साहित्य सम्मेलन तक ठहरना पड़ा।

ई. स. १९२१ में श्री न. चि. केलकरजीकी अध्यक्षतामें बड़ौदामे साहित्य सम्मेलन हो रहा था। पूनाके सभी साहित्य-प्रेमी महानुभाव बड़ौदा जानेके लिए

निकल पड़े। यशवन्तजीकी इच्छा जानेकी थी, लेकिन वे कुछ सोच-विचारमें पड़ गए। शिक्षा-क्षेत्रके उन-जैसे एक साधारण क्लर्कको उसके लिए अपनी जेबकी ओर देखना आवश्यक था। अन्तमें हाँ–ना करते किसी तरह बड़ौदा पहुँचनेका उन्होंने निश्चय कर लिया। सब लोग पहले ही चले गए थे। यशवन्तजीने उसके बादकी ट्रेन पकड़ी। उस समय साहित्य-सम्मेलनका कार्यक्रम विशिष्ट हेतुपूर्वक निर्धारित किया जाता था। कार्यक्रम प्रारम्भ होते ही पहले एकाध प्रस्ताव पेश होता था; उसपर चर्चा की जाती थी और अन्तमें निर्णय लिया जाता था। प्रस्तावके बाद दो-तीन कवि अपनी कविताएँ गाया करते थे। काव्य-गायनके इस कार्यक्रमके बाद एकाध निबन्ध पढ़ा जाता था। उसके बाद पुनः एकाध प्रस्ताव आता था और उसपर चर्चा होती थी। कार्यक्रमके इस प्रकारके आयोजनसे कहींपर भी निरुत्साहकी सृष्टि नहीं होती थी, विविधताके कारण दिलचस्पी बनी रहती थी और प्रस्तावकी चर्चामें जो तनातनी पैदा हो जाया करती थी, वह भी समाप्त हो जाती थी।

उस सम्मेलनमें काव्य-गायनके समय यशवन्तजीको कविता सुनानेके लिए बुलाया गया। तब उन्होंने अपनी 'देहाचा पूल' कविता प्रस्तुत की। उसी कविताके द्वारा उन्होंने एक महत्प्रश्न उपस्थित किया :—

इतिहास आज हा श्रवतां
वाटेल खन्त जरि चित्तां
तरि मनन करावें आतां
कां स्वराज्य तेव्हां ज्ञालें—
कां स्वराज्य सांप्रत नुरले ?

[जब हम आज इस इतिहासको सुनते हैं, तो हमारे मनमें एक दुःख पैदा होता है। लेकिन फिर भी अब हम यह सोचें कि पहले स्वराज्य क्यों आया था और अब वह क्यों चला गया है ?]

इस कविताका श्रोताओंपर बड़ा ही विलक्षण प्रभाव पड़ा। सब इस नवोदित कविकी ओर देखने लगे। उनमेंसे कइयोंने तो यहाँ तक कहा कि यह कवि भविष्यमें 'यशवन्त' (कीर्तिमान) होकर चमकेगा। और सचमुच आज वह हमारे सामने ही 'यशवन्त' बन गया है।

उसी दिन रातको यशवन्तजीके पास राजमहलसे निमन्त्रण आया। वहाँ उन्होंने अपनी कुछ और कविताएँ सुनाईं। उनमें 'मालूं नको ग !' (माँ, मुझे मत मार !) नामकी कविता भी थी। यशवन्तजीने देखा कि वहाँ भी उनकी कविताओंकी सकौतुक प्रशंसा की जा रही है। इस तरह यशवन्तजी मराठी पाठकोंमें विख्यात हो गए।

बड़ौदामें यश-सम्पदा लूटकर वे पूना आए। अब उनकी कीर्ति चारों ओर फलने लगी थी। किन्तु उन्हें दुःख यह था कि उनके इस यश-वैभवको देखनेके लिए उनकी माँ जीवित नहीं हैं। उनका स्वर्गवास ई. स. १९१८ में इनफ्लुएञ्जाकी महामारीमें हो गया था। तब यशवन्तजीकी भावना इस रूपमें छलक उठी :—

गुंफून पूर्वजांच्या मी गाइलें गुणाला
साऱ्या सभाजनांनीं या वांनिलें कृतीला
आई, करावया तूं नाहींस कौतुकाला।

[मैंने कवितामें पूर्वजोंके गुणोंका बखान किया। मेरी इस कृतिकी सारे लोगोंने प्रशंसा की। परन्तु ऐ माँ, मेरा कौतुक करनेके लिए आज तू नहीं है!]

यशवन्तजीकी सुप्रसिद्ध कविता "आई" (माँ) का जन्म इस प्रकार हुआ था।

बड़ौदा सम्मेलनके जरिए यशवन्तजी मराठी-रसिकोंके सामने आए। अब मराठीके रसिक-जन उनकी काव्य-रचनाकी ओर बड़ी उत्सुकता एवं आशाभरी दृष्टिसे देखने लगे थे। यशवन्तजीकी काव्य-सरिता सतत प्रवाहिनीके रूपमें आगे बढ़ रही थी। ई. स. १९२३ में यरवदाके रिफार्मेटरी स्कूलमें उनका तबादला हुआ। रिफार्मेटरी स्कूलका कार्य था—बाल अपराधियोंको सुधारकर सन्मार्ग दिखाना। वहाँ सश्रम कारावासकी सजामें विद्यार्जन करवाया जाता था। विद्यार्जनमें मूलो-द्योगोंकी शिक्षाका भी समावेश था। जब उनके कवि-हृदयको इस नए जीवनका परिचय मिला, तो उनकी भावनाओंके तार झंकृत हो उठे और 'बंदिशाळा' (जेलखाना) नामक खण्ड-काव्यका जन्म हुआ। उसमें यशवन्तजीने लगभग तीन हजार पंक्तियोंमें एक विधवाकी कथा गूँथी है। उसके इकलौते बेटेपर कोई अपराध आरोपित किया जाता है। इधर माँ पर विपत्तियोंका पहाड़ टूट पड़ता है, उधर लड़केको यातनाएँ सहनी पड़ती हैं और उसीमें उन दोनोंका अन्त हो जाता है। इन सबका वर्णन करते हुए यशवन्तजीने अपने काव्यमें एक सामाजिक समस्याको साकार रूप दिया है। इस प्रकार शिक्षा-विभागका यह तबादला उनकी काव्य-रचनामें सहायक एवं प्रेरणाप्रद सिद्ध हुआ। उनका यह खण्ड-काव्य सन् १९३२ के सितम्बरमें प्रकाशित हुआ था।

उसके बाद उनकी बीमारी उनके जीवनका महत्त्वपूर्ण भाग है। उसे महत्त्वपूर्ण इसलिए कहा जा सकता है कि पूरे तीन वर्ष (१९३८ के १९४०) तक बीमारीमें बीते। इतने समय तक वे बीमारीकी छुट्टीपर रहे और बादमें नौकरीसे मुक्त हो गए।

उन बीमारीके दिनोंमें ही बड़ौदामें श्रीमान् प्रतापसिंहजी महाराज गायक-वाडका राज्याभिषेक हुआ। बड़ौदा दरबारकी ओरसे सुझाव आया कि यशवन्तजी

उस समारोहपर एक काव्य लिखें। 'काव्य-किरीट' नामक खण्ड-काव्यकी रचना तभी की गई। एक राजाके स्वर्गवासी हो जानेपर जब दूसरा राजा गद्दीपर बैठता है, तब प्रजा कैसे क्या महसूस करती है, इसको यशवन्तजीने अपने इस खण्ड-काव्यद्वारा प्रकट किया है। एक प्रकारसे उसमें उन्होंने राजधर्मकी ही चर्चा की है।

'काव्य-किरीट' के यशवन्तजीको १९४० के अक्टूबरमें बड़ौदाका 'राजकवि' बनाया गया। जिस बड़ौदा दरबारमें वे १९२१ में अभिवादन करने गए थे, वहीं १९४० में वे 'राजकवि' बनाए गए। यह बात सिर्फ बीस ही बर्षोमें घटित हो गई।

राजाश्रयकी प्राप्तिके बाद भी यशवन्तजीकी काव्य-रचना पूर्ववत् ही चलती रही। उनकी काव्य-प्रतिभापर किसी भी प्रकारका आवरण नहीं पड़ा, यही उनकी विशेषता है।

ई. स. १९५० में तैतीसवें मराठी साहित्य सम्मेलनके अध्यक्ष-पदसे उन्हें विभूषित किया गया। इस तरह उन्हें राजाश्रय और लोकाश्रय दोनों प्राप्त हुए।

उन्हें जो राजाश्रय और लोकाश्रय प्राप्त हुआ, उसका प्रमुख कारण यह है कि उनके काव्योंमें मराठी जन-मनकी भावनाएँ अभिव्यक्त हुआ करती है। दिनोंदिन यह समीकरण दृढ़मूल होने लगा है कि यशवन्तका काव्य महाराष्ट्र-मनकी प्रतिध्वनि है।

दि. २५ जनवरी १९५६ को आकाशवाणीके दिल्ली-केन्द्रसे एक अखिल भारतीय कवि-सम्मेलनका कार्यक्रम ध्वनिक्षेपित किया गया था। उसमें प्रत्येक भारतीय भाषाका एक-एक प्रतिनिधि-कवि आमन्त्रित किया गया था। मराठी भाषाके कवियोंका प्रतिनिधित्व करनेके लिए श्री यशवन्तजीको चुना गया। उसमे उन्होंने अपनी 'पुकार' नामक कविता सुनाई। भारत अपना स्वतन्त्र संविधान तैयार कर चुका था और उसने उसपर अमल करना भी शुरू कर दिया था। उस संविधान द्वारा जिस जनतन्त्रका निर्माण होने जा रहा था, उसी जनतन्त्रकी यह 'पुकार' थी। राजधर्मकी चर्चा उन्होंने 'काव्य-किरीट' में पहले भी की थी। अब 'पुकार' में उन्होंने दुबारा उसपर विचार किया। यह कविता भी प्रस्तुत संग्रहमें सम्मिलित है।

१ मई १९६० को महाराष्ट्र राज्यकी घोषणा हुई। मराठी भाषा-भाषियोंके एक राज्यका उदय हुआ। अब मराठी भाषाको राज्य-भाषाके रूपमें प्रगतिका अवसर प्राप्त होगा, यह सोचकर सम्पूर्ण महाराष्ट्र निवासियोके आनन्दका पारावार नहीं रहा। यह स्पष्ट दिखाई देने लगा कि मराठी भाषाका सर्वांगीण विकास अब द्रुतगतिसे होगा। महाराष्ट्र सरकारने दि. १–१०–१९६० को विजया-दशमीके शुभ मुहूर्तपर कवि यशवन्तको 'महाराष्ट्र-कवि' के रूपमे सम्मानित किया। यशवन्तजीके जीवनका यह देदीप्यमान कालखण्ड है। यह समीकरण पुनः प्रस्थापित हुआ कि यशवन्तजीका काव्य महाराष्ट्रका प्रातिनिधिक काव्य है। उन्हें राजाश्रय और लोकाश्रय तो पहलेसे ही प्राप्त था। प्रचलित जनतान्त्रिक युगीन राज्यने

उनका सम्मान किया और उन्हें आश्रय दिया। यशवन्त 'यशवन्त' सिद्ध हुए। यही है उनकी यशोगिरि, यशोनिधि और यशोगन्ध।

महाराष्ट्र-कवि यशवन्तजीको राज्याश्रय प्राप्त होनेके कुछ महीनों बाद दि. १२ जुलाई १९६१ को पूनापर जल-प्रकोप हुआ। उस समय वे पूनामें ही थे। बाढ़ने पूनाका जो भीषण संहार किया, उसे देखकर उनका मन आकुल-व्याकुल हो उठा। लेकिन एक तरफ दर्दनाक विनाशको देखकर जहाँ यह व्याकुलता जाग उठी थी, वहीं उनके मनमें यह भी जिद थी कि इस विनाशकी छातीपर फिरसे नूतनताका निर्माण होना चाहिए। उस समयके अपने प्रदीर्घ काव्य 'मुठे ! लोकमाते !'मे वे कहते है :–

आरंभापासुनी आहे
निसर्गाशींच सामना !
वर्ततां, विस्मृति याची
होऊं देऊं नये मना ।।
बुद्धि आहे, शक्ति आहे
आहे कल्पकता, कला.
हतप्रभ तरी होणें
शोभे कां मनुच्या कुलां ?

[हे मन, इसकी विस्मृति न होने दे कि प्रारम्भसे ही हमारा मुकाबला निसर्गसे रहा है। मनु-कुलके पास बुद्धि है, शक्ति है, कल्पकता और कला भी है; तब क्या हतप्रभ होना उसे शोभा देता है ?]

आज यशवन्तजीकी उम्र लगभग ६२ सालकी हो गई है। फिर भी उनकी काव्य-रचना बराबर चल रही है। उसमे भिन्न-भिन्न मोड़ दिखाई देते है, नई-नई कल्पनाएँ दिखाई देती है और सबसे बड़ी बात उसमें महाराष्ट्र-मनकी हुंकार सुनाई देती है।

यशवन्तजीके जीवनसे हम कई बाते सीख सकते है, किन्तु स्वयं यशवन्तजीने कभी ऐसा दावा नहीं किया। उनका तो एक ही कहना है :––

जर रुचल्या कांहीं ओळी
मुंडावळि त्यांची भाळी
घ्या बांधुनि, तेंच परंतु
नच माझें ध्येय काम।
रुचल्या न कांहीं जर ओळी
पेटवा तयांची होळी
मिरवील शाश्वता व्योमीं
धूर हि तो गात नाम ।।

[यदि कुछ पंक्तियाँ पसन्द हों तो उनका सेहरा माथेपर सजा लो, किन्तु मेरा ध्येय और काम इतना ही नहीं है। यदि कुछ पंक्तियाँ न रुचें तो उनकी होलियाँ जला दो। उनका धुआँ मेरी कीर्तिका गान करते हुए सतत नभमें मँडराएगा।]

यशवन्तका काव्य :

यशवन्तजीकी काव्य-सम्पदा और जीवन-चरित्रपर दृष्टिपात करनेसे एक बात फौरन ज्ञात होगी कि उन्होंने गत चालीस वर्षोंमें ईमानदारीसे काव्य-आराधना की है और उसमें उन्होंने कोई कसर बाकी नहीं रखी। यही कारण है कि वे आज मान्यवर महाराष्ट्र-कविके रूपमें गौरवान्वित हुए। उनकी 'सरिता' नामक काव्य-पंक्तियाँ उनके काव्य-प्रवाहकी पूर्णतया निदर्शक हैं। उनके काव्य-प्रवाहने कभी किसी बातकी चिन्ता या परवाह नहीं की। वसन्त ऋतु हो या शिशिर ऋतु, साफ-सुथरी सुहावनी चाँदनी रात हो या अन्धकारमय भयावह काल-रात्रि, स्मशान-भूमि हो या युद्ध-भूमि—यशवन्तजीकी काव्य-सरिता अपने ताल-सुरमें निनाद करती हुई आगे बढ़ती रही। उसने कभी चिन्ता नहीं की; न कभी निराशाको पास फटकने दिया। नितान्त ईमानदारीको किसी बातका डर या खेद क्यों हो? वे कहते हैं:—

नको करूं संकोच
पाखरा! नको करू संकोच
पिकल फळ हें तुझियासाठीं
खुपस आपली चोंच.
मज संवेदन असे नसे कीं,
हृदय तुला कां पोंच
पहा रसिक हे खुडती कुसुमा
जों न उमलतें तोंच.
क्षता वांचुनी जरि न विमोचन
तरि बरवी तव चोंच!

[संकोच मत कर, ऐ पंछी, संकोच मत कर! यह जो फल पक गया है, तेरे लिए ही है; इसलिए उसपर तू अपनी चोंच चला। मैं सम्वेदनशील हूँ कि नहीं, इसकी चिन्ता तू क्यों करता है? रसिकोंको देख, फूल अच्छी तरह खिल भी नहीं पाता कि वे उसे तोड़ लेते हैं। बिना घावोंके यदि मेरी मुक्ति सम्भव ही न हो, तो फिर तेरी चोंच ही अच्छी है।]

यही ईमानदारी उनके भावाविष्करणका प्राण है। जिन घटनाओंसे उनका हृदय भर आता है, उन घटनाओंकी प्रतिक्रियाओं अथवा प्रतिबिम्बोंका वे

सहज सुन्दर आविष्कार करते हैं। उसके लिए वे शब्दोंका आडम्बर नहीं फैलाते, गूढ़-गुंजनका गुंजारव नहीं करते, अनाकलनीय नवीन प्रतीकोंके फेरमें नहीं पड़ते। उनके लिए तो '**अंतरीचें धावे स्वभावें बाहेरी**' (हृदयके भाव सहज रूपसे बाहर दौड़ पड़ते हैं)।

यशवन्तजीने जिन दिनों काव्य-रचनाका प्रारम्भ किया था, उन दिनों रेवरेण्ड ना. वा. टिळक, विनायक, गोविन्दाग्रज, बालकवि, बी, ताम्बे आदि नामवर कवि मराठी काव्य-काननकी शोभा बढ़ा रहे थे।

बालकविकी भूमिका थी :—

सुंदरतेच्या सुमनावरचें दंव चुंबुनी ध्यावें
चैतन्याच्या गोड कोवळ्या उन्हांत हिंडावे।
प्रीतिसारिका गीत तियेचें ऐकावें कानीं
बनबावें मन धुंद रंगुनी काव्यसुधापानीं।

[ऐसा लगता है कि सुन्दरताके पुष्पोंपर पड़ी हुई ओस-बिन्दुओंको चूम लूं, चैतन्यकी मीठी, मुलायम धूपमें घूमता फिरूँ, प्रीति-सारिकाके गीत सुनता रहूँ और काव्य-सुधापानमें डूबकर अपने मनको मस्त बना लूं।]

और गोविंदाग्रज कह रहे थे :—

निष्प्रेम चिरंजीवन ते।
जगिं दगडालाहि मिळतें॥ धिक् तया॥
क्षण एक पुरे प्रेमाचा।
वर्षाव पडो मरणांचा॥ मग पुढें॥

[दुनियामें निष्प्रेम चिरंजीवन तो पत्थरको भी प्राप्त होता है। ऐसे जीवनको धिक्कार है। प्यारका एक क्षण ही काफी है; उसके बाद फिर मृत्युकी बरसात ही क्यों न हो!]

वा. ना. टिळक सुमनों एवं शिशुओंपर मुग्ध होकर कविताएँ लिख रहे थे। केशवसुतने काव्य द्वारा जो नए विचार प्रकट किए थे, उनका भी अनुकरण हो रहा था। केशवसुतकी 'तुरही' (तुतारी) पर एक 'तुतारी मण्डल' बन चुका था।

यशवन्तजीके काव्य-लेखनके समय मराठी कविता इस प्रकार रूप ग्रहण कर रही थी। अचानक ई. स. १९२० के लगभग उसने एक नया मोड़ लिया। १९२० के आसपास गोविन्दाग्रज, बालकवि, रे. टिळक आदि कवि-मनीषी चल बसे और काव्य-क्षेत्रमें एक शून्यका निर्माण हो गया। खाली जगहकी पूर्ति करनेका कार्य आगे चलकर 'रवि किरण मण्डल' ने किया। यद्यपि यशवन्तजी

'रवि किरण मण्डल' के अविभाज्य घटक हैं, फिर भी उनके काव्यने अपना एक अलग स्वतन्त्र व्यक्तित्व कायम किया है।

यशवन्तजी मुख्यतया भावगीतकार हैं। उनके भावगीतोंकी विशेषता यह है कि उनकी अभिव्यक्ति पहले व्यक्तिगत होती है, बादमें वह समष्टिका रूप धारण कर लेती है। उनकी 'माँ' (आई) कविता अति व्यक्तिगत है, किन्तु उस कवितामें बहुतसे मराठीके पाठक अपनी 'माँ' के दर्शन करते है। अपनी इस कवितामें यशवन्तजीने 'महाराष्ट्र माता' को मूर्त रूप दिया है।

यशवन्तजीकी कविताओंमें बुद्धिकी अपेक्षा भावनाको अधिक आह्वान रहता है। अपने काव्यसे लोगोंकी तकलीफें कम हों, उनमें उत्साह पैदा हो जाए, जीवन-पथपर चलनेकी उन्हें ताकत मिले, यह उनका हेतु है। यशवन्तजीके काव्यका यह एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। उन्हें तृप्त मनका आशीर्वाद चाहिए। अपनी 'प्याऊ' (पाणपोई) कवितामें वे साफ-साफ कहते है :—

येई भाई येथ पाही घातली ही पाणपोई।
धर्म-जातो कोणती ती भेद ऐसा येथ नाहीं॥

[आओ भाई, यहाँ देखो, यह प्याऊ लगाई है। इसमें धर्म, जातिका कोई भेदभाव नहीं है।]

इस कविताकी प्याऊको यशवन्तजीने कैसे लगाया है? वे कहते हैं :—

आद्य जे कोणी कवी तत्स्फूर्तीच्या ज्या सिंधुगंगा
आणिल्या वाहून खांदीं कावडी त्यांतील कांहीं॥

[जो-जो आद्य-कवि हुए हैं, उनसे स्फूर्त रसोंकी सिन्धु-गङ्गा, मै अपने कन्धोंपर ढोकर लाया हूँ।]

पान्थसेवासाधनीं हें
व्हावयातें गार पाणी।
मृत्तिकेचे मात्र माझे
कुंभ, ही माझी नवाई॥

[पथिकोंकी सेवाके लिए वह शीतल जल बने, इसलिए मेरे मटके सिर्फ मिट्टीके हैं। बस यही मेरी विशेषता है।]

तो फिर स्वभावतः प्रश्न उठता है कि यह सब उठापटक क्यों?—

पावतां तृप्ती मना, संचारतां अंगीं उमेदी।
जो दुवा देशील पांथा तेवढी माझी कमाई॥

[मन तृप्त होनेपर, बदनमें उत्साह निर्माण होनेपर, ऐ पथिक! जो दुवाएँ तुम दोगे, वही मेरी कमाई है।]

काव्यकी ओर देखनेकी यशवन्तजीकी यह भूमिका है। वे अपने काव्य द्वारा कहीं भी तर्क-कर्कश विचार प्रस्तुत नहीं करते। भावनाओंका आवाहन करते-करते उनका काव्य काव्य-रसिकको उसके अपने प्रतिबिम्बका साक्षात्कार करा देता है। काव्य सम्बन्धी यशवन्तजीकी यह भूमिका बड़ी ही मनोहारी है।

यशवन्तजीके संस्कारक्षम मनपर सह्याद्रिके परिसरका गहरा असर हुआ है; उसपर उन्हें गर्व है। वे अपने आपको 'सह्याद्रिकी घाटियोंका कवि' कहते हैं:—

दऱ्याखोऱ्यांतला आला कवी हा खास दर्बारा
मराठ्यांच्या महालक्ष्मी, तुला घे शाहिरी मुजरा॥

[सह्याद्रिकी घाटियों—कन्दराओंका यह कवि तेरे खास दरबारमें आ पहुँचा है। ऐ महाराष्ट्रकी (स्वातन्त्र्य) महालक्ष्मी! मेरे इस शाहीरी (चारणी) प्रणामको स्वीकार कर।]

सह्याद्रिके इस परिसरने ही उनका निर्माण किया है। इस परिसरकी प्रत्येक वस्तु मराठोंके दिव्य इतिहाससे पुनीत हुई है। इसलिए कविको उसका सार्थ अभिमान है। और इसीलिए वे मराठोंकी महालक्ष्मीको प्रणाम करते हैं। इतना ही नहीं,—

झणीं बोला मला आज्ञा त्वरें सोडीन ललकारी।
पुन्हा लावीन नाचाया महाराष्ट्रीं दऱ्याखोरीं॥

[जल्दीसे मुझे आज्ञा दे, मैं तुरन्त ललकारी लगाऊँगा और महाराष्ट्रकी घाटियों—कन्दराओंको फिरसे नाचने लगाऊँगा।]

अपनी काव्य-शक्तिपर कविका कितना अदम्य विश्वास है! मराठोंकी बहादुरीकी ओर वे एक निराली दृष्टिसे देखते है, इसीलिए उन्होंने सीधा सवाल पूछा है—

कां स्वराज्य तेव्हां झालें?
कां स्वराज्य सांप्रत नुरलें?

[उस समय स्वराज्यकी क्योंकर स्थापना हुई और आज वह क्यों नहीं है?]

उनकी 'देहाचा पूल' (देहका पूल) कविता बेहद मशहूर हुई। जिस समय छत्रपति शिवाजी महाराजने स्वराज्य-स्थापनाका श्रीगणेश कर दिया था, उस समयके एक रोमहर्षक प्रसंगपर यह कविता आधारित है। शत्रुपक्षके एक सरदारकी पराजयके लिए उनके शूर मावलों (मराठों) ने आगके खन्दकमें अपने

आपको झोंककर अपने शरीरोंका पुल बना दिया था। उस घटनाका बड़ा ही जीवन्त वर्णन इस कवितामें है। किन्तु, उसका अन्तिम चरण ही खरा 'यशवन्ती' चरण है। इस अन्तिम चरणमें ही हमें यशवन्तजीके सच्चे दर्शन होते हैं। उनके ऐतिहासिक काव्य भी भावगीतोंके परे नहीं जाते।

देशकी रक्षाके लिए जिस प्रकार उन्होंने ऐतिहासिक उदाहरण प्रस्तुत किए, उसी प्रकार वर्तमान जनतन्त्रके युगमें उन्होंने जनतन्त्रकी 'पुकार' लगाई है और वीरोंकी आरती गाई है। कौन हैं वे वीर?——

देश ज्यांचा देव,
त्यांचें दास्य ज्यांचा धर्म हो,
दास्यमुक्ति ध्येय हो।
आणि मार्कण्डेयसे
जे जिंकती काळाप्रती,
गाऊं त्यांना आरती ॥

[देश जिनका देवता है, उसकी सेवा जिनका धर्म है, दासतासे उसकी मुक्ति जिनका ध्येय है और जो कालको भी मार्कण्डेयके समान जीत लेते हैं—— आओ, हम उनकी आरती गाएँ।]

और यह कर्तव्य पूरा करते-करते यदि वीरोंको सफलता नहीं मिले, शारीरिक कष्ट सहने पड़ें, प्रागार्पण तक करने पड़ें तो? उन वीरोंके हसे यशवन्तजी कहते है:——

मरणीं अमुच्या अनेक फुलतिल लोकीं दीपावली
जेत्यांनो, व्हा पराभूत, हो देउनि आम्हां सुळी ॥

[हमारी मृत्युसे संसारमें अनेक दीपावलियाँ प्रज्वलित होंगी। विजेताओ! तुम हमें सूलीपर चढ़ा-चढ़ाकर अपनी पराजयको नजदीक बुलाओ।]

इससे और क्या सधेगा?——

भावि पिढचांना मिरवायास्तव अपुल्या वक्षस्थळीं
तजेल अक्षय चिन्ह द्यावया द्या आम्हाला सुळी ॥

[तुम हमे सूली दे दो ताकि भावी पीढ़ियाँ अपने सीनेपर हमारी स्मतिके सतेज और अमर चिह्न लगाकर गौरवसे घूमें।]

इस प्रकारकी अत्यन्त तेजस्वी एवं ओजस्वी अभिव्यक्तियाँ हमें यशवन्तजी-के काव्यमें मिलती हैं।

ऐतिहासिक और राष्ट्रीय भावाविष्कारके साथ-साथ उन्होंने सामाजिक अन्यायोंपर भी प्रकाश डाला है। समाजमें बलशाली प्रभुओंकी इच्छा सम्पादन करनेवाला एक वर्ग होता है। इस वर्गके लोग अपने थोड़े-बहुत अधिकारोंके बल-पर छोटोंको छलते हैं और अपनेसे बलशाली प्रभुओंकी इच्छा सम्पादित करते हैं। इसपर एक सुन्दर रूपककी योजना कर यशवन्तजीने 'गुलामकी शिकायत' (गुलामाचें गाऱ्हाणें) महाराष्ट्रको सुनाई। उस शिकायतकी तीव्रता मनको भेद देती है। वह गुलाम हृदय मसोसकर कहता है :—

'त्या बक्षिसाच्या पोतड्या
हासून मोतद्दार घे,
माझ्या तनूच्या चिंधड्या
कोणीहि पाहेना परि.'

[सईस पुरस्कारकी उन थैलियोंको हँस-हँसकर लेता है; किन्तु मेरे शरीरकी धज्जियोंको कोई नहीं देखता!]

अन्तमें गुलामका अन्तःकरण निराशासे भर उठता है और वह मालिकसे प्रश्न करता है :—

किंवा तुझी इच्छाच का—
जावें फुटोनी म्या उरीं?

[क्या तेरी यह मन्शा है कि मेरी छाती ही फट जाए?]

विषम समाज-रचनामें ऐसे दृश्य हमें पद-पदपर दिखाई देते हैं। उन्हें दिक्कालके बन्धन नहीं हैं। इस त्रिखण्ड और त्रिकालबद्ध तथ्यको यशवन्तजीकी प्रतिभाने केवल चौदह चरणोंमें साकार बनाया है। उसकी बुनावट बहुत ही सीधी-सादी है; किन्तु मूल विचार बड़ा ही ज्वलन्त है।

खण्डकाव्य 'बन्दीशाला'का निर्माण ऐसी ही सामाजिक समस्यामेंसे हुआ है। उस खण्डकाव्यमें समाजकी दुष्ट एवं विघातक रूढ़ियोंका बड़े सुन्दर ढंगसे पर्दाफाश किया गया है। एक विधवापर आई आपत्तियोंकी शृंखलामें वह और उसका लाड़ला कैसे फँस जाते हैं, उनपर स्वार्थियोंद्वारा कौन-कौनसे आरोप लादे जाते हैं; विभिन्न घटनाओंके प्रवाहमें एवं उनकी लपेटोंमें उनकी कैसी हालत होती है और अन्तमें उसीमें उनका कैसे अन्त होता है, आदि बातें यशवन्तजीने अत्यन्त निर्भयतासे प्रस्तुत की हैं। उनकी प्रखरता कभी-कभी हमसे देखी नहीं जाती, लेकिन स्वयं यशवन्तजी उसको देख सके हैं। उसका कारण यह है कि उन्हें उसका अनुभव है। वे कहते हैं :—

वास्तवतेचा कशास मजला आठव देशी तरी?
रुतून बसली उरीं कधींची तिची विषारी सुरी.
त्याच ठिबकत्या रक्तामधूनी लिहितों गाणें नवें
भीतऱ्या जीवा! परि कानांना तुझ्या न तें ऐकवें।

[अरे मुझे वास्तविकताकी याद क्यों दिलाते हो ? उसकी वह जहरीली छुरी बहुत पहलेसे मेरे हृदयमें धँसी हुई है। उसी जख्मके बहनेवाले खूनसे मै नया गीत लिख रहा हूँ। किन्तु हे डरपोक प्राण! तुझसे वह सुना तक नहीं जाता!]

यशवन्तजीके दिमागकी मूसमें अनेक सुख-दुख एकत्रित हुए हैं। उन सुख-दुःखोंकी हुंकारें उनके काव्यमें प्रस्फुटित हो रही है।

सुख-दुखकी इस अभिव्यक्तिमें यशवन्तजी स्त्रीको भी समान हिस्सेदारके रूपमें सम्मिलित कर लेते है। स्त्रीके प्रति उनका दृष्टिकोण उदार है। वे चाहते है कि पुरुष स्त्रीको अलंकारके रूपमें न देखें। उन्हें यह स्वीकार नहीं कि स्त्रीकी अलंकारके समान साध-सम्भाल की जाए। यशवन्तजीकी स्त्री पुरुष-वर्गसे पूछती है--

कांच-बाहुलीसमान जपणें कां प्रीत तरी ?
आपुलिया सारखेच करणें ही प्रीत खरी !
मग अपुल्यासारखीच करुनी घ्या श्रमजीवी
गेह नव्हे देव्हारा; गृहिणी मी, नच देवी.

[क्या प्रीतिका लक्षण यही है कि पुरुष स्त्रीको काँचकी गुड़ियाकी तरह सम्भालकर रखे ? वस्तुतः अपने जैसा ही उसे बनाना सच्चे प्रेमका लक्षण है ! इसलिए मुझे अपने जैसा ही श्रमजीवी बना लो, क्योंकि घर मन्दिर नहीं है और मैं गृहणी हूँ, देवता नहीं।]

घर-गृहस्थीकी धूप-वर्षाका भार केवल पुरुष ही वहन एवं सहन करते रहें; गृहस्थी चलानेके लिए केवल पुरुष ही अपनी एड़ी-चोटीका पसीना बहाएँ, सुखकी रोटी और शान्तिमय जीवनकी शीतल छायाके लिए सिर्फ पुरुष ही खटाटोप करते रहें, अनवरत चिन्ता वहन करते रहें--यह सब उन्हें मान्य नहीं। पुरुषोंके प्रत्येक सुख-दुखमे स्त्रीको हाथ बँटाना चाहिए। गृहस्थीमें उसका भी समावेश है, घर उसका भी है; इसलिए उसे बनाने-चलानेमे उसके भी हाथ बँटानेकी आवश्यकता है। स्त्री काँचकी गुड़ियाकी तरह अलमारीकी शोभा बढ़ानेवाली कोई वस्तु नहीं है। स्त्रीकी ओर उस दृष्टिसे देखना सच्चे प्रेमका कतई द्योतक नहीं है। उसे तो जीवनके प्रत्येक क्षणमें सहभागी होना चाहिए, फिर चाहे वह क्षण सुखका हो या दुखका।--

जरी देई वेल पान्हा
कळचा फुलती उनांत।
आईसंगे हवा बाळा
गोंजाराया तात-हात॥

[यद्यपि बेल (लता) कलियोंको अपना रस देकर बढ़ाती है; फिर भी वे (कलियाँ) धूपमें ही खिलती हैं। माताके साथ बच्चा रहे, लेकिन उसे पुचकारनेके लिए पिताका हाथ भी चाहिए।]

गृहस्थीमें माता-पिता, पति-पत्नीका स्थान कितना सन्तुलित है, इसका कथन यशवन्तजीने सीधे-सादे रूपक द्वारा किया है। यह रूपक बड़ा लाजवाब है। इस सीधे-सादे रूपकके द्वारा यशवन्तजीने एक बहुत बड़े विचारको अभिव्यक्ति दी है। स्त्री और पुरुष दोनोंके सम-समान कार्यसे प्रीतिकी बेल फलती-फूलती है, किसी एकके कुछ करनेसे नहीं। आप चाहें तो इसे प्रेमका तत्त्वज्ञान कह सकते ह।

यशवन्तजीने ग्रामीण लोगोंपर उन्हींकी भाषामें भावगीत लिखे हैं। 'घर', कलेवा-गीत (न्याहारीचें गाणें), प्रेमकी दौलत (प्रेमाची दौलत) आदि कविताओके द्वारा पाठकोंको महाराष्ट्रके ग्रामीण जीवनका परिचय प्राप्त होता है। वह ग्रामीण-जीवन बड़ा सम्पन्न है। देखिए, कैसा है वह—

धन-दौलत घ्या देखून
कांहींच नाहिं लपलेलें
पडवीला कणगी पोतीं
मोतीं त्यामधिं बिनमोल
दावणीस गायी बैल
त्ये अम्हा हिरे अन लाल
दर साल
पिकें येतात
खाण शेतांत
तीच सोन्याची—"

[धन-दौलत देख लो, कुछ भी आपसे छिपा नहीं है। बरामदेके कोठेमें बोरे रखे है, जिनमें अमूल्य मोती भरे पड़े है। गोठेमें गाय और बैल है; वे ही हमारे लिए हीरे और लाल है। हर साल जिनमें फसल आती है, वे ही हमारे खेत हमारे लिए सोनेकी खदान है।]

महाराष्ट्रके किसानोंकी यह धन-दौलत किसीको भी अमूल्य ही लगेगी। यशवन्तजीके ये गीत बहुत ही लोकप्रिय हुए। इन गीतोंके बाद कईयोंने उनका अनुकरण किया। मराठी काव्यको यह निराला मोड़ मिला। इसीमेंसे ही आगे चलकर कविताको महाराष्ट्रकी नमक-रोटी रुचने लगी। देखिए, शायद आपको भी वह पसन्द आ जाए—

कोपऱ्यावरिल त्या आम्रतरूच्या तळीं
मृदु तृणांकुरांची मखमल गादी भली
बुंध्यास टेकुनी, चक्रवर्ति जणु बळी
भूक लागतां चटणी किंवा कांदा
अन भाकर खाउनि द्यावी वर ढेकर.

[कोनेपर खड़े उस आम्रवृक्षके तनेसे टिककर उसकी छायातले, मुलायम तृणांकुरोंकी मखमल-सी सुन्दर गद्दीपर बलवान चक्रवर्ती राजाके समान बैठना और भूख लगनेपर चटनी या प्याजके साथ जवारीकी रोटी खाकर डकार लेना.....]

इस प्रकार चटनी या प्याजके साथ ज्वारकी रोटी खा चुकनेपर क्या किया जाए ?—

धुमाळ–बाळा जोडी घेउनि
मोट धरावी कधीं
करावी राखण मळणी कधीं
रास घालुनी डोळे भरुनी
संतोषें पाहुनी
निजावें वाकळ मग पसरुनी.

[कभी बैलोंकी जोड़ीको साथ लेकर मोट चलाना, कभी दँवरीके अनाजकी रखवाली करना और उसकी रासको जी भरकर देखना तथा फिर सन्तुष्ट होकर गुदड़ीपर पैर फैलाकर सो जाना—]

ऐसे इस शानदार भूपति—किसानके लिए यशवन्तजीने अपनी खास बन्दगी रिजर्व कर रखी है।

उसी प्रकार भूपति, राजाके क्या कर्तव्य होते हैं; उसके बारेमें प्रजाजनोंकी कौन-कौन-सी आकांक्षाएँ है और भूपतिका मुकुट कैसा हो, इसका दिग्दर्शन उनके 'काव्यकिरीट' नामक खण्ड-काव्यमें हमें मिलेगा।

एकदम छोटे और भोले-भाले बच्चोंकी आनन्दोर्मिसे लेकर निराश्रित, हताश, असहाय विधवाके क्रन्दन तक की भावनाओंकी सूक्ष्म जटिलताओंके दर्शन उन्होंने ठीक-ठीक किए और कराए हैं। इस गुत्थमगुत्थीमें कभी लुभावने और रमणीयके दर्शन उन्हें हुए, तो कभी वीभत्स और असुन्दरके भी; कभी समाजके दुष्ट रीति-रिवाज दिखाई दिए, तो कभी वीरोंके ओजपूर्ण चित्र भी। सब तरहके जिन भावोंको उन्होंने देखा, समझा और हृदयंगम किया, वे सब अपने मार्मिक यथार्थ रूपमें उनकी काव्य-सम्पदामें जगह-जगह विद्यमान हैं।

भावाविष्कारकी इस विविधताके कारण उनका काव्य राजाको, राज्यको तथा जनताको अच्छा लगा, भाया। मराठी काव्य-जगतमें जिसे तीनों द्वारा मान्यता मिली हो ऐसा यह काव्य अपने ढंगका अनूठा है। यशवन्तजीकी कविता उनके नामके सदृश ही 'यशवन्त' सिद्ध हुई है।

● ● ●

यशवन्त दिनकर पेण्ढरकर

[काव्य-सञ्चय]

१. स्वातंत्र्य लक्ष्मीस मुजरा

● ● ●

[वृत्त :—वियद्गंगा]

दऱ्याखोऱ्यांतला आला, कवी हा खास दर्बारा,
मराठ्यांच्या महालक्ष्मी, तुला घे शाहिरी मुजरा !

जगाचा मानितों स्वामी, स्वतांला मी महा मानी,
तुझ्या धामीं, तुझ्या कामीं, परंतू दास हा मानी.
असें शास्ता जनांचा मी ! परी माई, तुझा भाट
दिपावें विश्व वाणीनें, तुझ्या येथें न तो थाट.
नभींच्या तारकाराशी, पदाघातें झुगारीन
परि स्वातंत्र्यलक्ष्मी गे ! तुझ्या पायीं सदा लीन ॥१॥

जिजाऊचा स्वतेजाचा, शिवाजीचा स्वशौर्याचा
मराठ्यांच्या दराऱ्याचा, तसा तो स्वाभिमानाचा,
क्षणार्धीं चित्तचक्षूंना दिसाया लागला काळ
स्वराज्यीं जेधवां भाला जहाला नांगरी फाळ !
नभाला चुंबिता झाला, अतां तो मोडला भाला
परंतू वाव येथें हा तयाच्या शेष तेजाला.
भिनूं दे माझिया रोमीं, तयाचें थोडकें तेज
जनां देईन सांगोनी, नसे प्यालों कधीं पेज ! ॥२॥

१. स्वातन्त्र्य-लक्ष्मीको प्रणाम

सह्याद्रिकी घाटियोंका यह कवि तेरे खास दरबारमें आया है। ऐ महाराष्ट्रकी (स्वातन्त्र्य) महालक्ष्मी ! अपने इस शाहिर (चारण) की वन्दना स्वीकार कर !

मैं महामानी हूँ और अपने आपको इस दुनियाका स्वामी मानता हूँ। लेकिन तेरे यहाँ, और तेरे कामके लिए, मैं सिर्फ सेवक हूँ, दास हूँ। जन-मानसका मैं शास्ता हूँ, किन्तु माँ ! तेरा तो भाट ही हूँ। मेरी वाणीमें वह तेज है कि उससे सारा विश्व स्तम्भित हो जाए, लेकिन तेरे यहाँ मैं उस रुआबको लेकर नहीं आया हूँ। मैं अपने पदाघातसे आकाशस्थ तारक-राशिको बिखरा सकता हूँ, लेकिन ऐ स्वातन्त्र्यलक्ष्मी ! तेरे तो चरणोंमें मैं सदासे लीन रहा हूँ, नतमस्तक रहा हूँ। ॥१॥

माँ जिजाई*के आत्म-तेजका, छत्रपति शिवाजीके भव्य पराक्रमका और मराठोंके प्रचण्ड रुआब एवं स्वाभिमानका वह युग निमिष मात्रमें मेरे मनकी आँखोंके सामने नाचने लगा है। स्वराज्यके उस युगमें हलका हर फाल तीक्ष्ण भाला बनकर आसमानको चूमने लगा था। आज वह भाला टूट गया है, पर उसका तेज बना हुआ है। वर्तमान परिस्थितिमें उसके तेजका, स्वतन्त्रताके लिए मर मिटनेकी ललकका, बड़ा महत्त्व है। ऐ माँ, उस तेजका किञ्चित ही अंश क्यों न हो, मेरे रोम-रोममें सञ्चरित कर दे। तब मैं लोगोंको दावेसे कह सकूँगा कि मैंने कभी पेज (भातका पानी) पी ही नहीं। ॥२॥

---

* **जिजाई** :—छत्रपति शिवाजी महाराजकी माताका नाम जीजाबाई था।

इथें संचारतें वारें, थरारे स्पर्शनें अंग
अहाहा ! जाहली वृत्ती, समाधीमाजि त्या गुंग !
क्षणीं बोला मला आज्ञा, त्वरें सोडीन लल्कारी
पुन्हा लावीन नाचाया महाराष्ट्रीं दऱ्याखोरीं !
जहाला नांगराटीचा विखारी पूर्विचा भाला,
अतांच्या लेखणींतूनी नवा आणीन जन्माला !
समाधी लागली आहे म्हणोनी तोंवरी बोल,
मराठ्यांच्या यशोगानीं मनानें स्फूर्तिनें डोल ॥३॥

तनूचें भान जावोनी बनूनी शून्य त्या नजरा
पडूं दे माउली खालीं तुझ्या वेणींतला गजरा
यशाचा कौल मानोनी मुदें सोडीन दर्बारा
मराठ्यांच्या महालक्ष्मी, तुला घे शाहिरी मुजरा ! ॥४॥

इस दरबारमें वह हवा बहती है जिसके कि स्पर्शसे मेरा अंग-अंग जोशसे स्फुरित होने लगा है। अहा ! मेरी वृत्ति तल्लीन, मस्त हो उठी है। ऐ माँ, मुझे फौरन आज्ञा दे कि मैं ललकारूँ जिससे कि महाराष्ट्रकी हर घाटी और उपत्यका नाचने लगे। हलके फालका बना हुआ पूर्वकालीन भाला अब विषैला बन गया है। उसके बदलेमें अब अपनी लेखनीसे नए भालेका निर्माण करूँगा। जब तक कि मैं इस भाव-समाधिमें लीन हूँ, तब तक तू हुक्म दे। मेरी लेखनीसे मराठोंकी बहादुरीके यशोगीत सुनकर तू स्फूर्तिसे मनपूर्वक झूमने लगेगी। ॥३॥

मेरे स्फूर्तिप्रद गीतको सुनकर ऐ माँ, तू शरीरका भान भूल जाएगी, तेरी नजरें बहुत दूर शून्यमें ताकने लगेंगी और तेरी वेणीसे फूलोंका गजरा नीचे खिसक पड़ेगा। जब ऐसा होगा तो मैं मान लूंगा कि मैं सफल हो गया हूँ; और तब उस नीचे गिरे हुए गजरेको सफलताकी निशानी मानकर आदरपूर्वक उठा लूँगा और आनन्दमग्न हो तेरा दरबार छोड़ दूँगा। ऐ महाराष्ट्रकी महालक्ष्मी, अपने इस शाहीर (चारण) की वन्दना स्वीकार कर। ॥४॥

———————

१. द्या आम्हांला सुळीं

[जाति—समुदितमदना]

द्या आम्हांला सुळीं, जाहलों आम्ही तुमचे बळी
जगीं चिरंतन नांदतील परि अमुच्या शाण्णव कुळी ॥१॥

खुडून टाका आम्हांस—आम्ही दुर्वांकुर भूतळीं
पाताळापर्यन्त आमुची परंतु रुजली मुळी ॥२॥

काय हटवुनी हटतो सागर? —हटेल एकीकडे
उफाळेल तो दुसरीकडुनी, गिळून डोंगर कडे ॥३॥

ज्वालामुखिला बघतां लिंपू? काय कल्पना खुळी!
तोच अनावर उद्यांस होईल जागृत शाण्णव कुळी ॥४॥

भाऊराया! देवकिचीं हीं वधा सात अर्भकें
किती तोकडे उपाय? त्यांनीं होणारें कां चुके? ॥५॥

बांधुनियां अंधारकोठडचा, वधस्तंभ रोवुनी
बलोद्धतांनो! धराल का अवतार-कार्य रोधुनी? ॥६॥

शिळेवरी आपटा आमुचीं अहो शिरें कोवळीं,
सुटून तुमच्या मुठींतुनी परि शक्ति जगीं मोकळी ॥७॥

९. दे दो हमें सूलीपर !

दे दो, दे दो, तुम हमें सूली दे दो। हम तुम्हारे शिकार बन चुके हैं। किन्तु याद रखो, उसके बाद भी हमारी सैकड़ों पीढ़ियाँ इस संसारमें आबाद रहेंगी ।।१।।

दूर्वांकुर समझकर तुम हमें बर्बाद कर सकते हो, किन्तु ध्यान रखो कि हमारी जड़ें पाताल तक फैली हुई हैं ।।२।।

अरे ! क्या सागर हटानेसे हटता है ? लाख कोशिश करो, वह एक ओर हटा हुआ दिखेगा; पर देखो वह दूसरी तरफ पहाड़ों और चट्टानोंको निगलकर उफनता हुआ आगे बढ़ रहा है ।।३।।

ज्वालामुखीके मुखको लीप-पोतकर दबाना चाहते हो ? कैसी पागल कल्पना है तुम्हारी ? अरे, कल वही अनवरुद्ध बनकर अपनी तमाम भयानक प्रचण्डताके साथ जाग उठेगा न ! ।।४।।

बन्धुराज (कंस) ! मार डालो तुम अपनी बहन देवकीके इन नवजात शिशुओंको। पर अपनी मौतसे बचनेका तुम्हारा यह उपाय कितना नाकाफी है ? उससे जो लिखा है, क्या वह टल सकेगा ?।।५।।

तुम जो अपनी शक्तिके घमण्डमें दीवाने हो गए हो, क्या यह सोचते हो कि काल-कोठरियाँ बनवाकर और फाँसीके तख्ते गड़वाकर ईश्वरीय अवतार-कार्यको रोक दोगे ? ।।६।।

पटको, तुम हमारे इन कोमल सिरोंको शिलाओंपर पटको; लेकिन देखो, तुम्हारे हाथसे छूटकर वह शक्ति मुक्त हो गई है ! ।।७।।

द्या आम्हाला सुळीं ! जाहलों आम्ही तुमचे बळी,
अमर तत्त्व;—अवतार तयाचा वाढतसे गोकुळी ॥८॥

द्या आम्हांला सुळीं आणि व्हा कलेवरांचे धनी
फोडुनि पणत्या ज्योतितत्व कां जाई जगतांतुनी ? ॥९॥

द्या आम्हांला सुळीं आणखी मूठमूठ घ्या धुळी.
रुण्डमालिका अमुची त्या तर ज्योतिवरिल काजळी ॥१०॥

मरणीं अमुच्या अनेक फुलतिल लोकीं दीपावली
जेत्यांनो, व्हा पराभूत हो देउनि आम्हां सुळीं ॥११॥

खुशाल ह्या फासांत गुंतवा एकेकाचा गळा
पुरा साजरा करा आमुच्या विजयाचा सोहळा ॥१२॥

आजवरी जुळविली यथामति जी जोवित-पुस्तिका
फाशीविण तिज नसे समुचिता भरतवाक्य—गीतिका ॥१३॥

द्या आम्हांला सुळीं; होउं द्या कृतार्थ जन्मुनि कुळीं
पितर मुक्तिच्या मोदें म्हणतिल "धन्य पुत्र हे बळी." ॥१४॥

भावि पिढ्यांना मिरवायास्तव अपुल्या वक्षःस्थळीं
तजेल अक्षय चिन्ह द्यावया द्या आम्हांला सुळी ॥१५॥

———

दे दो, तुम हमें सूली दे दो । हम तुम्हारे शिकार बन चुके हैं। लेकिन याद रखो, तत्त्व (आत्मा) अमर है, और उसका अवतार गोकुलमें बढ़ रहा है ।।८।।

हमें फाँसी दे दो और सिर्फ लोथड़ोंके धनी बन जाओ! किन्तु क्या दीपकोंको तोड़ देनेसे ज्योति-तत्त्व दुनियासे चला जाता है ? ।।९।।

लटका दो,तुम हमें फाँसीपर लटका दो और ऊपरसे हमारी लाशोंपर मुट्ठियाँ भर-भरकर मिट्टी भी डाल दो । लेकिन याद रखो, हमारी यह रुण्ड-माला उस ज्योतिके ऊपर दीवालोंपर चिपका हुआ काजल है ।।१०।।

हमारे वीर-मरणसे संसारमें अनेक दीपावलियाँ सजेंगी । ऐ जीतके घमण्डमें चूर शासको ! दो, हमें सूलियाँ दो और अपनी पराजयको निमन्त्रित करो ।।११।।

तुम आरामसे हममेंसे एक-एककी गर्दन फाँसीके फन्देमें लटकाते चलो और इस तरह हमारी विजयका रास्ता प्रशस्त करो तथा हमारे विजयोत्सवको ठाट-बाटसे, सम्पूर्णतासे मनाओ ।।१२।।

आज तक हमने अपनी बुद्धिके अनुसार अपने इस सुन्दर जीवन-रूपी पुस्तककी रचना की है। ऐसी इस पुस्तकका समुचित भरत वाक्य, अन्तिम गीत, फाँसीके अलावा और क्या हो सकता है? ।।१३।।

दो, हमें सूली दो ! और अच्छे कुलमें हमने जन्म लिया है इसकी कृतार्थताको हमें अनुभव करने दो। इससे हमारे स्वर्गस्थ पितरोंको मुक्ति मिलेगी और वे आनन्दमें झूमते हुए कहेंगे--"धन्य हैं शहीद होनेवाले हमारे ये बेटे, धन्य हैं !" ।।१४।।

दे दो, हमें फाँसी दे दो; ताकि आगामी पीढ़ियाँ हमारे तेजोमय अक्षय चिह्नोंको और स्मृतियोंको गौरवके साथ अपने वक्षःस्थलोंपर धारण करें ।।१५।।

———

३. गाउं त्यांना आरती

[वृत्त–भ्रान्त]

संगरी वीराग्रणी जे धैर्यमेरु संकटीं
जन्मले या भारती
राष्ट्रचक्रोद्धारणीं कर्णापरी ज्यांना मृती
गाउं त्यांना आरती ॥१॥

कोंदला अंधार मार्गीं खाचखड्डे मातले
तस्करांनीं वेढिलें
संभ्रमीं त्या जाहले कृष्णापरी जे सारथी
गाउं त्यांना आरती ॥२॥

स्वार्थहेतूला दिला संक्षेप ज्यांनीं जीवितीं
तो परार्थी पाहती
आप्तविस्तारांत ज्यांच्या देश ही सामावती
गाउं त्यांना आरती ॥३॥

देश ज्यांचा देव, त्याचें दास्य ज्यांचा धर्म हो
दास्यमुक्ति ध्येय हो
आणि मार्कण्डेयसे जे जिंकिती काळाप्रती
गाउं त्यांना आरती ॥४॥

देह जावो, देह राहो : नाहिं ज्यांना तत्क्षिती
लोकसेवा दे रती
आणि सौभद्रापरी देतात जे आत्माहुती
गाउं त्यांना आरती ॥५॥

३. गाएँ उनकी आरती

भारतमें ऐसे-ऐसे वीर जन्मे हैं जो संकटोंमें धैर्यके मेरु बने रहे, संग्राममें वीराग्रणी बनकर डटे रहे, राष्ट्र-रथके चक्रको दल-दलसे उभारनेके काममें जिन्होंने कर्णकी तरह अपनी जान दे दी। आओ, उनकी हम आरती गाएँ ।।१।।

चारों ओर घोर अन्धकार घिर आया, मार्गमें विपत्तियोंकी खाईयाँ खुद गईं, डाकुओंने सब ओरसे घेर लिया। घबराहट एवं किंकर्तव्य-मूढ़ताकी इस स्थितिमें जिन्होंने श्रीकृष्णकी तरह सारथी बनकर राष्ट्रका मार्ग-दर्शन किया; आओ, उनकी हम आरती गाएँ ।।२।।

जिन्होंने अपने जीवनमें स्वार्थ-हेतुको तिलाञ्जलि देकर परमार्थका ही ध्यान रखा, जिनके सगे-सम्बन्धियोंमें पूरे देशका समावेश होता है; आओ, उनकी हम आरती गाएँ ।।३।।

जो देशको ही देवता मानते हैं, उसकी सेवा करनेको ही अपना कर्तव्य-कर्म समझते हैं, दास्यत्वसे उसकी मुक्तिको ही अपना ध्यान बनाते हैं और मार्कण्डेयकी तरह मृत्युको भी जीत लेते हैं; आओ, उनकी हम आरती गाएँ ।।४।।

देह जाए या रहे—इसकी जो परवाह नहीं करते, जिनकी रति, लगन लोक-सेवामें ही है और जो अभिमन्युके समान अपने प्राणोंकी आहुति देते रहते हैं; आओ, उनकी हम आरती गाएँ ।।५।।

जाहल्या दिङ्मूढ लोकां अर्पिती जे लोचनें
क्षाळुनी ज्यांचीं मनें
कोटिदीपज्योतिशा ज्यांच्या कृती,ज्यांच्या स्मृती
गाउं त्यांना आरती ॥६॥

नेटकें कांहीं घडेना, काय हेतू जीवना
या विचारीं मन्मना
बोधितों कीं "एवढी होवो तरी रे सत्कृती
गा तयांची आरती" ॥७॥

———

दिङ्मूढ़ बने लोगोंके मनोंकी दिङ्मूढ़ताको दूरकर जो दृष्टि प्रदान करते हैं, जिनकी कृतियाँ और स्मृतियाँ कोटि-कोटि दीप-ज्योतिकोंकी तरह प्रकाशमान हैं; आओ, उन महानुभावोंकी हम आरती गाएँ ।।६।।

'जब कि मैं जरा-सी भी कोई भलाई,कुछ अच्छाई नहीं कर पाता,तब इस जीवनका क्या अर्थ है, क्या उपयोग है ?'—यह विचार जब-जब मेरे मनमें उठता है, तो मैं उसे समझाता हूँ कि और कुछ नहीं तो देश और समाजके लिए मर मिटनेवालोंकी आरती गानेका ही सत्कृत्य किया कर।।७।।

———————

४. गुलामाचें गाऱ्हाणें

[वृत्त–श्यामला]

जूं बैसलें मानेवरीं चाबूक हा पाठीवरी
ह्या कर्दमीं मार्गावरी चौखूर धावावें परि
हाकावया जो बैसला सत्तामदें तो झिंगला
माया-दयेची आर्द्रता नाहीं तयाच्या अंतरीं ॥१॥

मागें रथामाजीं धनी थुंकी तयाची झेलुनी
त्वेषें लगामा खेचुनी आसूड ने खालीं वरी
धोंड्यावरी ठेचाळतां खाचेंत पायीं मोडता
उंचीवरी संथावता ते कोरडे अंगावरी ॥२॥

विघ्नामधोनी वांचवा कर्तृत्व सारें दाखवा
या हाकणाराच्या नसे पर्वा तयाची अंतरीं
त्या बक्षिसाच्या पोतड्या हासून मोतद्दार घे
माझ्या तनूच्या चिंधड्या कोणीहि पाहेना परि ॥३॥

धांवूं किती रे मालका? होसी दयेला पारखा
किंवा तुझी इच्छाच का––जावें फुटोनी म्यां उरीं? ॥४॥

---

४. गुलामका रोना

जुआ गर्दनपर रखा हुआ है, कोड़ा पीठपर पड़ रहा है और मैं इस कीचड़ भरे मार्गपर बेछूट दौड़ रहा हूँ। लेकिन जो हाँकने बैठा है, वह अधिकार-मदमें झूम रहा है, उसके हृदयमें थोड़ी भी दया-माया नहीं है ।।१।।

पीछे गाड़ीमें जो मालिक बैठा है, उसके इशारेपर वह गुस्सेसे लगाम खींचता है और चाबुकको ऊपर नीचे दिखाता है। डरके मारे मैं और तेजीसे दौड़ता हूँ। लेकिन जब पत्थरसे मुझे ठोकर लगती है, किसी गढ़ेमें गिरकर पैर मोच खा जाता है या चढ़ाईके कारण गति मन्द हो जाती है, तो वह मेरे शरीरपर कोड़े बरसाने लगता है ।।२।।

अपना सारा करतब दिखाकर चाहे मैं कितने ही संकटोंसे बचाऊँ, लेकिन हाँकनेवालेको इसकी कोई कदर ही नहीं है। हाँ, संकटोंसे बचानेके नामपर इनाम मात्र वह स्वयं हँसते-हँसते जेबमें डाल लेता है। पर हाय, इसे कोई नहीं देखता कि कोड़ोंकी मारसे मेरे शरीरकी चिन्धियाँ उड़ गई हैं ।।३।।

ऐ मालिक ! मैं और कितना दौड़ूँ ? क्या तूने दया छोड़ ही दी ! या तेरी इच्छा है कि मेरी छाती ही फट जाए ? ।।४।।

———

५. पाणपोई

[वृत्त – व्योमगंगा]

येइं भाई येथ पाही घातली ही पाणपोई
धर्म-जाती कोणती ती भेद ऐसा येथ नाहीं
संसृतीचा हा उन्हाळा, तल्खली होई जिवाची
स्वेदबिन्दू अश्रुधारा यां विना पाणीच नाहीं ॥१॥

वायुवीची भोंवतीं आंदोलुनी त्या वंचितातो
झोंबती अंगीं झळा अन् मूर्च्छना ये ठायिं ठायीं
साउली नाहीं कुठेंही तापतो मार्तण्ड डोईं
श्रान्त पान्था! बांधली ही तूझियासाठीं सराई ॥२॥

आद्य जे कोणी कवी तत्स्फूर्तीच्या ज्या सिन्धु गंगा
आणिल्या वाहून खांदीं कावडी त्यांतील कांहीं
पान्थसेवासाधनीं हें व्हावयातें गार पाणी
मृत्तिकेचे मात्र माझे कुम्भ, ही माझी नवाई ॥३॥

ओंजळी, दो ओंजळी, आकण्ठ किंवा घे पिऊनी
हो जरा ताजा तवाना, येउं दे सामर्थ्य पायीं
पावतां तृप्ती मना, संचारतां अंगीं उमेदी
जो दुवा देशील पान्था तेवढी माझी कमाई ॥४॥

———————

५. प्याऊ

आ रे भाई, देख मैंने यहाँ यह प्याऊ लगाई है। इसमें जाति-धर्मका भेदभाव नहीं है। संसारकी यह भीषण ग्रीष्मऋतु, प्यासके मारे जी बेचैन हो उठा है। पसीना और आँसुओंके अलावा कहीं भी पानी नहीं बचा है! ॥१॥

गरम लू के चक्करदार भँवरे ऊपर उठ-उठकर सता रहे हैं। गर्मीकी लपटें शरीरको काट रही हैं और बार-बार मूर्च्छना-सी आ रही है। कहींपर भी छाया नहीं दिखाई देती। ऊपर दोपहरीका सूरज तप रहा है। ऐ श्रान्त पथिक! तेरे लिए ही यह सराय खड़ी की गई है ॥२॥

आद्यकालमें जो कवि हो गए, उनसे उत्स्फूर्त-रसोंकी सिन्धुगंगा बही है। उसमेंसे कावड़ियोंमें कन्धोंपर ढो-ढोकर कुछ यहाँ लाया गया है। पथिकोंकी सेवामें वही अब इस प्याऊमें ठण्डा पानी बन गया है। वह दिव्य रस मैंने मिट्टीके घड़ोंमें सञ्चित कर रखा है, यही मेरा अनूठापन है ॥३॥

ऐ पथिक! एक अँजुली, दो अँजुली या चाहे जितना पानी पी और तरोताजा हो जा, पैरोंमें शक्ति आने दे। हृदय तृप्त होनेपर अंगोंमें आशाका सञ्चार हो जानेपर तू जो आशीष देगा, हे पथिक! वही मेरी कमाई है ॥४॥

६. कुरकुर

[जाति–शूर्पणखा]

'ते हवेत माझे मला
सखे! परि भंवतिं सदा गलबला ।। ध्रु. ।।
हे मधुप फुलांभोंवती
डोलती जसे गुंजती
लोभले तेंवि सोबती
तयांचा ओघ न कधिं आटला––।।१।।
हीं कितीक बोलावणीं
घडि मुळीं न जाई सुनी
परि विचार न करी कुणी
किती हा असेल जिव भागला––।।२।।
तो मोहक बैठक जनीं
सुमन लतिकापर्णांतुनी
खुलतसे हिरा कोंदणी
जेंवि कीं नभांत इंदू–कला––।।३।।
हें विभव असें आगळें
मज हेंहि न का ग कळे ?
परि इतरां मिळतीं फुलें
असोनी दारीं तरु बहरला––।।४।।
बघ खुशाल मोत्याहि तो
त्या अंकावर झोंपतो
हिणवितो जणू चिडवितो
हि मेल्या खटयाळ मुलखांतला ! ––।।५।।
निर्वेध असावें जिणें
दिन रात्री व्यापाविणें
चिर संगत अशि लाभणें
कधीं ग ? छाया जशि वस्तुला––।।६।।

———————

६. भुनभुन

हे सखि, केवल मुझे मेरा प्रियतम चाहिए। लेकिन उनके आसपास तो हमेशा भीड़-भाड़, जमघट्टा मचा रहता है।

जैसे ये भँवरे फूलोंके आसपास मँडराते हैं और गूँजते रहते हैं, वैसे ही उनसे आकर्षित उनके साथी आस-पास जुटे रहते हैं; उनका प्रवाह कभी समाप्त ही नहीं होता ।।१।।

अरे, बाहरसे पुकार-पुकारकर बुलानेकी भी कोई हद है! एक घड़ी भी सूनी नहीं जाती। कोई यह विचार तक नहीं करता कि वे थक गए होंगे ।।२।।

लोगोंमें जब वे बैठते हैं, तो कैसे मोहक दिखाई देते हैं! मानों लतिका-पर्णोंमें सुमन हो, कञ्चन जड़ावमें हीरा हो और आकाशमें चन्द्रकला ।।३।।

उनका यह वैभव सचमुच न्यारा है—क्या यह मुझे ज्ञात नहीं? किन्तु क्या करूँ? बहार मेरे आँगनके वृक्षमें आई है, पर फूल औरोंको मिलते हैं ।।४।।

देखो, वह मोती (कुत्ता) भी क्या ठाटसे उनकी गोदीमें सो रहा है! वह नटखट मानों मुझे खिझा रहा है, चिढ़ा रहा है ।।५।।

अहा, जीवनमें किसी तरहकी झंझट-खटखट न हो! दिन-रात हमेशा उनका चिर सहवास बना रहे! जिस प्रकार छाया सदा वस्तुके साथ बनी रहती है, वैसा ही नसीब हे सखि, मेरा कब होगा? ।।६।।

---

७. हा काय माझा गुन्हा ?

[जाति–प्रणयप्रभा]

तुजकडे पाहतो पुन्हा पुन्हा
हा काय गडे माझाच गुन्हा ?

सतेज सुंदर टपोर डोळे
भावचंद्रिका जयांत खेळे
उचंबळे हृत्सिंधु तीमुळें
विसरेल कसा तो आत्मगुणा ? ॥१॥

छटा ढगांच्या जणुं शशिभवती
बटा कचांच्या निटिलावरती
मोर-पिसासम सदा नाचती
पिसें लावतिल त्या न कुणा ? ॥२॥

नाजुकतेचा मृदुल गालिचा
नाच तयावर आरोग्याच्या
तांबुस कांतिमया लहरींचा
लाजवितेस उषा–अरुणा ! ॥३॥

गालीं किंचित गोड फुगवटी
लवलवणारी सुबक हनुवटी
नजरेमधली लकब चोरटी
मदिरेस आणिती धुंदपणा ॥४॥

नयन नासिका अभिनय वाणी
प्रखर परजल्या शस्त्रावाणी
विंधिलेस तू मजसी त्यांनीं
काय न या पाहसी व्रणा ? ॥५॥

७. यह क्या मेरा अपराध है ?

मैं तेरी ओर बार-बार देखता हूँ, इसमें क्या मेरा ही अपराध है ? सिर्फ मेरा ही ?

तुम्हारी आँखें सतेज, सुन्दर और बड़ी-बड़ी हैं, जिनमें भावचन्द्रिका (प्रेमका चाँद) खेल रही है । इसीलिए मेरा हृदयसिन्धु उमड़ पड़ा है । तुम्हारी भावपूर्ण सुन्दर आँखोंसे आकर्षित होकर यदि हृदय उमड़ पड़ता है, तो उसमें हृदयका क्या दोष? भला वह अपनी वृत्तिको कैसे छोड़ देगा? ।।१।।

तुम्हारे मुखड़ेपर तुम्हारे केशोंकी ये लटें ऐसी लगती हैं मानों चन्द्रमाके आस-पास बादल छिटके हों । मयूरके पंखोंके समान हमेशा नाचने-डोलनेवाली ये लटें भला किसे न पागल बना देंगी ? ।।२।।

मानों नाजुकताका एक मुलायम गलीचा हो और उसपर तन्दुरुस्ती (आरोग्य) की प्रकाशनवान ताम्रवर्णी लहरें नाच रही हों—ऐसी ही है तुम्हारे बदनकी यह शोभा ! उसके सामने ऊषाकी अरुणिमा भी लज्जित जाती है ।।३।।

तुम्हारे गालोंकी वह किञ्चित गोलाई, तुम्हारी चञ्चल छोटी-सी सुन्दर नाजुक ठुड्डी, छिपकर देखनेका वह तुम्हारा तरीका—अहा, मदिराको भी मस्त बना देते हैं ।।४।।

तुम्हारी आँखें, तुम्हारी नासिका और तुम्हारे नाट्यपूर्ण नखरेदार बोल मानों धार लगाए हुए प्रखर शस्त्र हों । तुमने मुझे उनसे घायल कर दिया है। क्या तुम मेरे इन जख्मोंको नहीं देखती ? ।।५।।

सन्मुख गमसी तू राका शशि
वरून दिससी ताऱ्याऐशी
उजळशील पथ घन नैराश्यीं
उपजे हा भरवसा मना ! ॥६॥

भयद न वाटावी ही अटवी
निज वास्तव्यें यास्तव नटवी
जननांतरिच्या आणिक पटवी
हृदयाच्या हृदयास खुणा
तुजकडे पाहतों पुन्हा पुन्हा ॥७॥

———

तुम जब सामने होती हो, तो पूनमकी चाँद-सी लगती हो और दूर रहती हो, तो तारिका-सी दिखाई देती हो। मेरे मनमें यह विश्वास जागता है कि तुम मेरे घने-अँधेरे, निराशासे भरे जीवन-पथको अवश्य प्रकाशमान बनाओगी ।।६।।

यह जीवन-रूपी जंगल भयप्रद न मालूम हो, इसीलिए तुम अपने वास्तव्यसे इसे सुन्दर बना रही हो। हम जन्म-जन्मान्तरके साथी हैं, यह बात हृदयसे हृदय कह रहा है, वे एक-दूसरेको अपनी पहचानके चिह्न समझा-पटा रहे हैं और इसीलिए तो मैं तुम्हारी तरफ बार-बार देख रहा हूँ ।।७।।

———

८. गृहिणी मी; नच देवी

[जाति – इंदुमुखी]

दूर सरा, सुखवुं नका, रिझवुं नका मज, सखया !
वाढविते माझ्यांतिल दुबळेपण तव माया
विकासाया वेलीवर फूल हवें ना सहजी ?
तरि उनांत पावसांत डोलूं द्या कलिका जी ॥१॥

दाखविता कळकळ जी, सुखमय कां ती मजला ?
होइन या कळकळिनें अधिकाधिक मी अबला.
अबला नच, तुल्यबला होऊं द्या मजलागीं
संसारीं समसमान दोघांची जरि भागी ॥२॥

आश्रयेंचि शोभतसे कविता, लतिका, वनिता
छे, शोभा गणतां जी, ती तर कीं दुर्बलता.
शोभा कां वागवुनी दुर्बलास कटि–खांदी ?
आश्रित मी नच लतिका, अंगभूत मी फांदी ॥३॥

तुमच्या इतुकेंचि मला वाहूं दे शिरिं ओझें
तनु होवो घर्मजलें थयथयतें कारंजें
बिंदि–बिजवरा न देइ घामाहुनि कधिं शोभा
माय दत्तकावरी न तनयाहुनि धरि लोभा ॥४॥

८. मैं गृहिणी हूँ, देवी नहीं !

दूर हटो, ए साजन ! मुझे बहुत लाड़ मत करो, मुझे रिझाओ मत। तुम्हारी ममता मुझमें दुर्बलताको बढ़ाती है ! लतापर फूल सहज-स्वाभाविक रूपसे खिलना चाहिए न ? इसलिए कलिकाको धूपमें, वर्षामें हिलने-डुलने, नाचने दो ।।१।।

तुम जो मेरे प्रति इतनी व्याकुलता, इतनी चिन्ता दर्शाते हो, क्या मेरा उससे कल्याण होगा, क्या उससे मैं सुखी बनूँगी ? नहीं, मैं उससे अधिकाधिक दुर्बल ही बनूंगी। मुझे अबला मत होने दो, तुल्य-बला होने दो। यदि हम दोनों इस संसारके हिस्सेदार हैं, तो हमें समबल, सम-समान होना चाहिए ।।२।।

'किसीके आश्रयमें ही कविता, लतिका एवं वनिता शोभा देती है।' —छिः यह बात झूठी है। जिसे तुम शोभा कहते हो, वह तो दुर्बलता है। दुर्बलको पीठपर, कन्धेपर उठाकर ले चलनेसे क्या उसकी शोभा बढ़ती है? मैं आश्रित लतिका नहीं, मैं तो वृक्षकी अभिन्न शाखा हूँ ।।३।।

मुझे भी सिरपर तुम्हारे जितना ही बोझ उठाने दो। यह शरीर पसीनेसे फव्वारेकी तरह तर हो जाए। शरीरको स्वेद बिन्दुओंसे बढ़कर बिन्दी और *बिजवरा भी सुशोभित नहीं करते। कोईभी माँ दत्तक-पुत्रपर अपने तनय (जाये पुत्र) से अधिक प्रेम नहीं करती। (स्वेद-बिन्दु तो मेरे अपने तनय हैं, गहने तो दत्तक लिए हुए हैं।) ।।४।।

---

* **बिजवरा** :—अर्धचन्द्रके आकारका एक गहना, जिसे टीकेके साथ भालपर पहना जाता है।

प्रेमानें घास तुम्हीं मज द्यावा मी घ्यावा –
प्रेमाचा खेळ काय हक्कचि मी मानावा ?
जोजवितां कां मज ह्या थाटुनिया सुखसोयी ?
कां जीवन–संगीता चाल एक अंगाई ? ॥५॥

झगडाया कष्टांशीं पदर मला खोवूं द्या
बिघ्नांच्या नजरेशीं नजर मला भिडवूं द्या
घ्या करुनी मज तुमच्याइतुकी बल-गुणशाली
मज पांगुळगाडयाविण चालूं द्या निज चाली ॥६॥

हा प्रपंच दोघांचा; समायीक ही शेती –
दो हातीं कां मग हो ! – पिकवूं या चौ हातीं.
थापिन मी भाकरीहि, चालवीन आणि विळा
वाहिन शिरिं घागरीहि, तेंवि मोट वा शिवळा ॥७॥

कांच-बाहुलीसमान जपणें कां प्रीत तरी ?
आपुलिया सारखेंच करणें ही प्रीत खरी !
मज अपुल्यासारखीच करुनी घ्या श्रमजीवी
गेह नव्हे देव्हारा; गृहिणी मी, नच देवी ॥८॥

घरकुलास दोघांच्या कष्टांच्या फुलमाळा
बांधाया येतील तरि तोच खरा सोहाळा
त्यांत शिळोप्यास बसूं बोलत मग गुजगोष्टी
आणि त्यांतल्याहि कांहि अडखळल्या जर ओष्ठीं

कळवाया त्या मजला वाटल्यास कुरवाळा
प्रीत तीच रिझविल; नच निगराणी, नच चाळा ॥९॥

'प्रेमसे तुम मेरे मुँहमें कौर दो और मैं उसे खाऊँ'—इसी तरहकी प्रेम-क्रीड़ाओंमें दंग रहना ही क्या मेरा अधिकार है ? क्या यही मैं मानूँ ? सब प्रकारकी सुख-सुविधाओंको इकट्ठीकर तुम मुझे क्यों छोटे बच्चेकी तरह थाप-थूपकर सुलाना-बहलाना चाहते हो ? क्या जीवन-संगीत लोरी (बच्चेको सुलानेका गीत) की धुनपर ही बज सकता है ? ॥५॥

कष्टोंका मुकाबला करनेके लिए मुझे पल्ला खोंसकर तैयार होने दो, विघ्न-बाधाओंकी नजरोंसे मुझे अपनी नजर भिड़ाने दो, अपनी तरह मुझे भी बलशाली एवं गुणवान बना लो। मुझे बिना कुबड़ियोंके अपनी चालसे चलने दो ॥६॥

वह हमारी गृहस्थी और खेती हम दोनोंकी मिलकर है। तब सिर्फ दो हाथोंसे ही नहीं, (मेरे भी दो हाथ मिलाकर) चारों हाथोंसे इसको सम्भालेंगे। मैं रोटी भी बनाऊँगी और हँसिया भी चलाऊँगी। सिरपर घड़े भी उठाऊँगी और मोट तथा जुएकी खूँटी-रस्सी भी ॥७॥

यह क्या प्यार हुआ कि काँचकी गुड़ियाके समान मेरी हिफाजत ही हिफाजत की जाए ? तुम मुझे अपने समान बना लो—यही प्यारका सच्चा तरीका है। तुम मुझे अपनी ही तरह श्रमजीवी बना लो। हमारा यह घर है, मन्दिर नहीं; और मैं गृहिणी हूँ, देवी नहीं ॥८॥

हम दोनोंके सम्मिलित परिश्रमकी फूल-मालाएँ जब हम अपने इस घरपर बाँधेंगे, तब वही हमारा सच्चा आनन्दोत्सव होगा। उस घरमें, फिर हम दोनों थककर जब कोई काम न होगा, तब बैठेंगे और प्यार की बातें करेंगे। उस समय यदि कोई बात मेरे ओंठोंमें आकर अटक जाए, या मुझे न सूझे, तब उसे सूचित करनेके लिए चाहो तो मुझे सहलाना, थपथपाना। वही प्रीति मुझे रिझाएगी। यह मेरी साज-सम्हाल और देखरेख अथवा बार-बार छेड़खानी मुझे पसन्द नहीं ॥९॥

---

९. दीप

[गज्जल वृत्त–मेनका]

दीप हा सांभाळुनी मी आणिला
तेवती तज्ज्योति राहो उज्ज्वला

घोर घोंगावून आलीं वादळें
लोटली तैशींच विघ्नांचीं दळें
कैकदा जी जाहली कंपाकुला
तेवती ही ज्योति राहो उज्ज्वला ॥१॥

कौरवांनी ओढिली जेव्हां निरी
पैठण्या–पीतांबरांनी श्रीहरी
लाज राखाया जियेची धावला
तेवती ही ज्योति राहो उज्ज्वला ॥२॥

झोपडीमाजी बघोनी एकटी
नेइ कापटचें हिला लंकापती
ध्वंसुनी लंकेसवे त्याच्या कुला
तेवली ही शुद्धशीला उज्ज्वला ॥३॥

घोर झंझावात आला यावनी
पार वाताहात झाली दख्खनीं
जागवी जी तेधवा सह्याचला
स्फूर्ति-शौर्याने भरोनी मावळा ॥४॥

तेज येऊं लागलें जों गोमटें
लोटलीं चौ बाजुंनीं तों संकटें
जाइ तैं वेषांतराने जिंजिला
तेवती ती ज्योत राहो उज्ज्वला ॥५॥

९. दीप

यह दीप मैं सँभालकर बड़े जतनसे लाया हूँ। उसकी ज्योति जलती रहे और उज्ज्वल प्रकाश बिखेरती रहे।

घोर गर्जना करते हुए बादल घिर आए हैं। साथ ही अन्य विघ्न भी दल बाँधकर टूट पड़े हैं। यह ज्योति उसमें कई बार कम्पित-व्याकुल हो उठी थी। पर वह बुझे नहीं, जलती ही रहे और उज्ज्वल प्रकाश बिखेरती रहे ॥१॥

कौरवोंने जब द्रौपदीकी साड़ी खींची, तब भगवान कृष्ण उसकी लाज बचानेके लिए जरी-रेशमी साड़ियों और पीताम्बरोंको लेकर दौड़ पड़े थे। उसी सत्कृत्यकी यह ज्योति जलती रहे और उज्ज्वल प्रकाश बिखेरती रहे ॥२॥

सीता-रूपी ज्योतिको कुटियामें अकेली देखकर लंकापति छल-कपटसे उठाकर लंका ले गया। तब उस (ज्योति) ने लंकाके साथ-साथ उसके समस्त कुनबेका नाश कर डाला और स्वयं शुद्ध शीला बनी जलती रही ॥३॥

जब यवनोंका प्रचण्ड झंझावात आया जिससे कि पूरा दक्खन एकदम अस्त-व्यस्त हो गया, तब इस ज्योतिने मावलों (मराठों) में स्फूर्ति एवं शौर्य भरकर समस्त सह्याद्रिको जागृत बना दिया था ॥४॥

जैसे-जैसे उस ज्योतिका तेज सुडौल बनने लगा, वैसे-वैसे चारों ओरसे संकट उभरने लगे और तब वह ज्योति वेषान्तरकर जिंजी (कर्नाटक)* में चली गई। वही ज्योति जलती रहे और उज्ज्वल प्रकाश बिखेरती रहे ॥५॥

---

*सम्भाजीके वधके बाद शिवाजीके पुत्र श्री राजाराम महाराजको स्वराज्यकी रक्षाके लिए वेष बदलकर जिंजी चला जाना पड़ा था।

भारतीं शूरांचिया खड्गांतुनी
भारती संतांचिया वाणींतुनी
भारती नेत्यांचिया त्यागांतुनी
भारताच्या तेवली उद्धारणी ॥६॥

पेट घेई जी पुन्हा कुरुक्षेत्रामधे
पेट घेई जी पुन्हा झांशीमधें
आणि मंडाल्यास जी फाके पुन्हा
देइ चैतन्यें नवीं भीरु जनां ॥७॥

येइ का कारागृहीं ती कोंडितां?
येइ का सत्तामदें ती दापितां?
अर्गला वा संगिनी वा शृंखला
रोधिती का तेवल्या ह्या ज्योतिला? ॥८॥

कद्रुच्या दास्यांत माता पिंजतां
जाहला देवांसवे जो झुंजतां
आणि आणी जिंकुनी जो अमृता
घेउनी त्या वैनतेयाच्या व्रता— ॥९॥

आजवेरी मांडला घोरांदर
दुर्मदांधांसंगतीं जो संगर
संपला भासे जरी तो आजला
तेवती ही ज्योति राहो उज्ज्वला ॥१०॥

क्षाळुनी साऱ्या खलां, ही चित्कला
भूतला होवो भविष्यीं मंगला ॥११॥

———————

यह ज्योति भारतमें शूर-वीरोंकी तलवारोंके माध्यमसे, सन्तोंकी वाणीसे और नेताओंके त्यागमें, भारतके उद्धारार्थ, हमेशा प्रज्ज्वलित रही है ।।६।।

जो पहिले कुरुक्षेत्रके धर्म-क्षेत्रमें प्रज्ज्वलित हुई थी, जो फिरसे झाँसीमें जागी थी, जिसकी प्रभा माँडलेके जेल* में भी छिटकी थी, और जो कायरोंके मनोंको नई चेतनासे भर देती है ।।७।।

ऐसी वह ज्योति क्या कारागृहमें बन्द की जा सकती है? क्या उसे सत्ताके मदसे नष्ट किया जा सकता है? अर्गलाओं, संगीनों अथवा शृंखलाओंसे क्या उस प्रज्ज्वलित ज्योतिको प्रकाश देनेसे रोका जा सकता है? ।।८।।

अपनी माताको कद्रुके दास्यत्वमें कष्ट उठाते देखकर जो देवताओंके साथ लड़ने तैयार हो गया था और जो उनको जीत-जीतकर अमृत ले आता था, उसी वैनतेय गरुड़के व्रतका अंगीकार कर,— ।।९।।

हमने दुष्ट मदान्धोंके साथ आज तक घमासान युद्ध ठाना था। वह यद्यपि आज समाप्त हुआ-सा दिखाई देता है, फिर भी यह ज्योति सदा जलती रहे और उज्ज्वल प्रकाश देती रहे ।।१०।।

सब दुष्टोंका संहारकर, चित्तको आनन्द देनेवाली यह ज्योति भविष्यमें भी भूतलपर कल्याणमयी बनकर जलती रहे ।।११।।

---

*'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है'—इस स्वराज्य-मन्त्रके द्रष्टा, प्रणेता तथा साधक लोकमान्य टिळकको माँडले जेलमें छह साल रखा गया था।

१०. घर

[जाति–उद्धव]

"लइ मानस अमुचा, द्यावी आपल्या घरीं ही पोर
पर शंका येउन कांहीं घेतें हें मन माघार!
पोरिला हौस मोत्यांची ती तुम्ही कशी पुरवाल?
हा हेत पडावी कीं ती ज्या घरीं माणकं लाल.
बोलतों
असूं द्या माफि
करा दिल साफि
असावें चोख
व्यवहार तरी बिनधोक."

"ठेवतां न पोटीं किंतू पुसलेत, लई आवडलें!
धनदौलत घ्या देखून कांहींच नाहिं लपलेलें.
पडवीला कणगी पोतीं मोतीं त्यांमधि बिनमोल
दावणीस गायी बैल त्ये अम्हां हिरे अन् लाल.
दर साल
पिके येतात
खाण शेतांत
तीच सोन्याची"—
बसलीच गांठ जन्माची.

———————

१०. घर

"आप हमारे हैं, इसलिए इच्छा होती है कि आपके घर यह लड़की ब्याह दी जाए। परन्तु कुछ शंकाएँ मनमें उठती हैं जिनके कारण मन पीछे हटता है। मेरी इस लड़कीको मोतियोंका बहुत शौक है, तुम उन्हें कैसे दे सकोगे? इससे तो अच्छा है कि जिस घरमें माणिक-मोती हों, वहीं इसे दिया जाए। मैं साफ-साफ बोल रहा हूँ, कृपया क्षमा करें। आदमीका दिल साफ हो और वह व्यवहारमें चोखा हो, तो किसी प्रकारका धोखा नहीं होता।"

"आपने अपने पेटमें कोई बात न रखकर साफ-साफ पूछा, यह मुझे बहुत अच्छा लगा। मेरे पास जो धन-दौलत है, उसे देख लीजिए, आपसे कुछ छिपा नहीं है। छपरीके कोठारमें बोरे भरे पड़े हैं। उनमें जो मोती हैं, वे अनमोल हैं। और गोठेमें जो गाय और बैल बँधे हैं, वे हमारे लिए हीरों और लालोंसे बढ़कर हैं। जिनमें प्रति वर्ष बहारदार फसलें उगती हैं, वे ही हमारे खेत हमारे लिए सोनेकी खानके समान हैं।"

यह सुनकर जन्म-जन्मान्तरका रिश्ता पक्का कर दिया गया।

११. न्याहारीचें गाणें

न्यारिचा वकुत ½ होईल मैतरणी बिगि-बिगि चाल
नांगूर-सुटीच्या आंत पोंचाया होवं ततं
सोडितिल हात बैलांला धुंडील नदर कोनाला ?
नदरे न पडन् मी जरी
जाईल मर्जि ग तरी
उरिं रुतऽल माझ्या सुरी
नग नग गमावूं येळ मैतरणी बिगि-बिगि चाल ।।१।।

लइ वाढुळ जुपि झाल्याली असत्याल सम्दिं शिणल्यालीं
शिण जाइल न्यारि करून अन् सांग कुना देखुन
त्यें खुलं तोंड घामानं भरधोसहि कणसाहुन
पाहिलं जरी रोज मी
तरि हौस न होई कमी
फिरफिरुन पगायास मी
व्होतसें मनिं उतायीळ मैतरणी बिगि-बिगि चाल ।।२।।

———————

११. कलेवा गीत

हे सखी ! उनकी न्याहारी* (कलेवे) का समय हो रहा है, जल्दी-जल्दी चल। हल छोड़नेके पूर्व हमें वहाँ पहुँच जाना चाहिए। वे हाथसे हलके बैल छोड़ेंगे और नजरसे मुझे ढूंढ़ेंगे; तब यदि मैं उन्हें दिखाई नहीं दूंगी, तो मुझपर वे खफा हो जाएँगे। उनका नाराज हो जाना मुझे छुरीकी तरह चुभेगा। इसलिए हे सखी ! समय मत गँवा, जल्दी-जल्दी चल ।।१।।

हमारी अच्छी उपजाऊ जमीन बहुत बड़ी है, उसमें हल चलाते-चलाते वे एकदम थक गए होंगे। कलेवा करनेके बाद किसे देखकर उनकी थकान दूर होगी ? पसीनेकी बूँदोंसे भरा हुआ उनका वह चेहरा, दाने-भरे भुट्टेसे भी अधिक सुहावना लगता है। उस चेहरेको मैं रोज देखती हूँ, फिर भी उसे देखनेकी मेरी इच्छा कभी कम नहीं होती, उसे बार-बार देखनेको मेरा मन उतावला रहता है। इसलिए हे सखी ! जल्दी-जल्दी चल ।।२।।

---

* **न्याहारी** :—खेतपर काम करते-करते बीचमें जो खाया जाता है, उसे मराठीमें 'न्याहारी' कहते हैं। स्वल्प भोजन।

१२. प्रेमाची दौलत

[जाति–भूपतिवैभव]

ही तुझीच वाकळ म्हणुनि मला लै प्यारी
पितींची आवड समद्याहुनि रे न्यारी
झालींत लक्तरं तरीहि मजला गोड
पुरविते पित्तं पाहिजेल त्याचं कोड?

ही तुझीच थाळी म्हणुनि चाटते राया
मज लागिर झालं म्हणती आयाबाया.
हा तुझाच पावा, मोरवेलिची काठी
झोपते घेऊनी रोजच पोटीं–पाठीं.

हें तुझ्या डोइचं जुनं जरी मुंडासं
कुरवाळित बसत्ये, होतं माझं हासं.
हें तुझ्या अंगचं जपुनि ठेविलं कुडतं
ही दौलत माझी–येडच त्याचं जडतं

माझिया कोण जो पोटीं । येइल
तो जवां बापई म्होरं । होइल
ह्यें घालुन त्याला पाहिन डोळं भरुनी
मग खुशाल तिरडी बांधा माझी कोणी

१२. प्रेमकी दौलत

यह गुदड़ी तेरी है, इसीलिए मुझे बहुत प्रिय है। अरे, प्रीतिकी पसन्द सबसे न्यारी होती है। वह चिथड़े-चिथड़े हो गई है, फिर भी वह मुझे बहुत भाती है। जो वस्तु प्रेमकी पूर्ति करती है, उसको प्यार करना चाहिए न? ॥१॥

यह थाली तुम्हारी है, इसलिए हे साजन! मैं उसे चाटती हूँ। यह देखकर औरतें कहती हैं कि मुझे भूत-प्रेत लग गया है। यह बाँसुरी तेरी है और मोरबेलकी लकुटिया भी। इसलिए हर रोज मैं उन्हें अगल-बगल चिपकाकर सोती हूँ ॥२॥

यह तेरे सिरका साफा यद्यपि पुराना हो गया है, तो भी मैं उसे सहलाती बैठती हूं। इसपर दुनिया मेरी हँसी उड़ाती है। इस तेरे पहने हुए कुर्तेको मैंने जतनसे रखा है। यही मेरी दौलत है और मैं उसके पीछे दीवानी हो गई हूँ ॥३॥

मेरे उदरसे जो कोई जन्मेगा और जब वह अपने पिताके समान ऊँचा-पूरा हो जाएगा, तब मैं उसे यह कुर्ता पहनाऊँगी और उसकी ओर आँखें भर-भरकर देखूँगी। उसके बाद जो चाहे, खुशीसे मेरी तिरकटी (जनाजा) बाँध ले ॥४॥

१३. आई

[जाति – रसना]

'आई' म्हणोनि कोणी आईस हाक मारी
ती हाक येइ कानीं मज होय शोककारी
नोहेच हाक, मातें मारी कुणी कुठारी
आई कुणा म्हणूं मी? आई घरीं न दारीं!
ही न्यूनता सुखाची चित्ता सदा विदारी
स्वामी तिन्ही जगांचा आईविना भिकारी ॥१॥

चारा मुखीं पिलांच्या चिमणी हळूच देई
गोठ्यांत वासरांना ह्या चाटतात गाई
वात्सल्य हें पशूंचें मी रोज रोज पाहीं
पाहून अन्तरात्मा व्याकूळ मात्र होई
वात्सल्य माउलीचें आम्हां जगांत नाहीं
दुर्भाग्य याविना का आम्हांस नाहिं आई ॥२॥

शाळेंतुनी घराला येतां धरील पोटीं
काढून ठेविलेला घालील घास ओठीं
उष्टचा तशा मुखाच्या धावेल चुंबना ती
कोणी तुझ्याविना गे का ह्या करील गोष्टी?
तूझ्याविना न कोणी लावील सांजवाती
सांगेल ना म्हणाया आम्हां 'शुभं करोति' ॥३॥

ताईस या कशाची जाणीव कांहिं नाहीं
त्या सान बालिकेला समजे न यांत कांहीं
पाणी तरारतांना नेत्रांत, बावरे ही
ऐकूनि घे परंतु "आम्हांस नाहिं आई"
सांगे तसें मुलींना "आम्हांस नाहिं आई"
ते बोल येती कानीं "आम्हांस नाहिं आई!" ॥४॥

१३. माँ

'माँ' कहकर कोई माँ को पुकार रहा है। जब वह पुकार मेरे कानमें आई, तो मुझे बड़ा दुःख हुआ; कारण माँ, तू नहीं है। अब मैं किसे माँ कहूँ? मेरी माँ घरमें भी नहीं है और बाहर भी नहीं है। माँ के होनेके सुखका अभाव मेरे चित्तको हमेशा विदीर्ण करते रहता है। भले ही मैं तीनों लोकोंका स्वामी हो जाऊँ, पर बिना माँ के भिखारी ही रहूँगा ॥१॥

चिड़ियाँ अपने बच्चोंके मुँहमें धीरेसे चुग्गा देती हैं और हाय, गोठेमें गायें अपने बछड़ोंको चाट रही हैं। पशु-पक्षियोंका यह वात्सल्य मैं प्रति दिन देखता हूँ। उसे देखकर मेरी अन्तरात्मा व्याकुल हो उठती है। कारण, मुझे इस दुनियामें अब माँका वात्सल्य प्राप्त नहीं है। इससे अधिक दुर्भाग्यकी बात और क्या हो सकती है कि मुझे माँ नहीं है ॥२॥

स्कूलसे घर लौटते ही मुझे अपने हृदयसे लगा लेनेवाली, विशेष रूपसे रखे हुए स्वादिष्ट कौरको मुझे खिलानेवाली और फिर मेरे उसी झूठे मुँहको चूम लेनेके लिए दौड़ पड़नेवाली मेरी माँ अब कहाँ है? ये सब बातें तुम्हारे सिवाय कौन करेगा? हाय, तेरे बिना अब कोई सन्ध्या-समय दीप-बाती नहीं करेगा और हमें "शुभं करोति" कहनेके लिए नहीं कहेगा ॥३॥

मेरी छोटी बहनको इस सबका कोई ज्ञान नहीं है। वह अभी छोटी-सी बालिका है, इन बातोंको नहीं समझती। मेरी आँखोंमें आँसू भर आते ही वह सिटपिटा जाती है। और मैं जब कहता हूँ कि हमें माँ नहीं है, तो सुन भर लेती है, और अपनी छोटी-छोटी सखियोंके सामने दुहराती है "हमें माँ नहीं है।" उसकी वह बोली कि "हमें माँ नहीं है" मेरे कानोंमें टकराती है ॥४॥

आई ! तुझ्याच ठायीं सामर्थ्य नंदिनीचें
माहेर मंगलाचें अद्वैत तापसांचें
गांभीर्य सागराचें औदार्य या धरेचें
नेत्रांत तेज नाचे त्या शांत चंद्रिकेचें
वात्सल्य गाढ पोटीं त्या मेघमंडळाचें
वास्तव्य या गुणांचें आई, तुझ्यांत सांचे ॥५॥

गुंफून पूर्वजांच्या मी गाइलें गुणांला
साऱ्या सभाजनांनी या वानिलें कृतीला
आई, करावया तूं नाहींस कौतुकाला
या न्यूनतेमुळे ही मज त्याज्य पुष्पमाला
पंचारती जनांची ना तोषवी मनाला
परि जीव बालकाचा तव कौतुका भुकेला ॥६॥

येशील तूं घराला परतून केधवां गे
दवडूं नको घडीला ये ये निघून वेगें
हे गुंतले जिवींचें पायीं तुझ्याच धागे
कर्तव्य माउलीचें करण्यास येइं वेगें
रुसणार मी न आतां जरि बोलशील रागे
ये रागवावयाही परि येइं येइं वेगे ॥७॥

माँ ! तुममें ही कामधेनुकी सामर्थ्य है। तुम मंगलधाम हो, तपस्वियोंका अद्वैत हो। तुममें सागरका गाम्भीर्य है, पृथ्वीका औदार्य है। तुम्हारी आँखोंमें शान्त चन्द्रमाका तेज है और हृदयमें मेघ-मालाओंका सघन वात्सल्य। इन सब गुणोंका वास, हे माँ ! सिर्फ तुममें ही है ।।५।।

•

पूर्वजोंके गुण-गौरवके गीत रचकर मैंने गाए। उस मेरे कामकी सभी सभाजनोंने प्रशंसा की। किन्तु माँ, मेरा कौतुक करनेके लिए तुम नहीं हो ! तुम्हारे अभावमें मुझे पुष्पमालाएँ भी नहीं भातीं, सुजनोंकी पञ्चारती भी मेरे मनको आनन्दित नहीं करती। तुम्हारे इस बालककी आत्मा तुम्हारे लाड़-प्यार-कौतुककी भूखी-प्यासी है ।।६।।

तू घर कब वापस आएगी, माँ। विलम्ब न कर, जल्दी-जल्दी चली आ। मेरे जीवन-तन्तु तेरे चरणोंसे लिपटे हुए हैं। मेरी आँखें तेरी ओर लगी है। माताका कर्तव्य करनेके लिए तू शीघ्र चली आ। तेरे गुस्सा होनेपर भी मै अब तुझसे नहीं रूठूंगा। गुस्सा होनेके लिए ही क्यों न हो, ऐ माँ, तू शीघ्र चली आ; जल्दी-जल्दी चली आ ।।७।।

———

१४. युगंधरांचें पालुपद

जमेच ना, घडेच ना
बनेच ना, पटेच ना!
'घ्या तर हातीं आतां बंदुक
चढवा पट्टे उभे आडवे
पिंड्रचांभंवतीं
कमरेभंवतीं
छातीवरती
शिका, चला व्हा कडवे शूर! ॥१॥

घडी बसाया हवी जगाची
नवीन सुंदर शांत निरामय,
उरस्फोड कां थोडी केली?
सिंधु आटले किती शाईचे!
बोरु मेरू–मंदारांचे
झिजले, गेले तासुन चिंबुन!
फेसहि आला ओठांभंवतीं!
पण––
जमेच ना, घडेच ना
बनेच ना, पटेच ना! ॥२॥

उपाय उरला एकच––बंदुक!
काडतुसांची तुडुंब संदुक
खांद्यावरती
पाठीवरती
छातीवरती
चढवुन, निधड्या छातीचे व्हा.
निधडी छाती? ––
––भ्याडपणा हा! ॥३॥

१४. युग निर्माताओंकी टेक

"जमता ही नहीं, होता ही नहीं, बनता ही नहीं, पटता ही नहीं !"

तो अब हाथमें लो बन्दूक ! आड़े खड़े पट्टे चढ़ाओ--पिण्डलियोंपर, कमरपर, सीनेपर। सीखो, चलो, कट्टर शूर-वीर बनो ॥१॥

संसारकी व्यवस्थाको ठीक करनेकी; उसे नया, सुन्दर, शान्तिमय और निरामय बनानेकी कोशिशें क्या कम हुई हैं? स्याहीके सागर सूख गए; मेरू और मन्दार पर्वतोंकी लेखनियाँ घिस-पिट गईं, पिचक गईं। करते-करते ओंठोंपर फेन आ गए ! लेकिन--

जमता ही नहीं, होता ही नहीं, बनता ही नहीं, पटता ही नहीं ॥२॥

एक ही इलाज शेष है—बन्दूक ! कारतूसोंसे खचाखच भरी हुई सन्दूक !

उसे कन्धेपर, पीठपर, सीनेपर चढ़ाकर निडर दिल बनो।

निडर दिल ?--

--कायरता है यह ! ॥३॥

अहो, बंदुका रोखुन धरणें
हुकमासरशी चाप ओढणें
किंवा वरुनी आग ओतणें
हीं ? ——
नामर्दांची जमवाजमवी !
भ्याडपणाची लपवालपवी !
स्वतां पराजित, दुजांस शिकवी——
"शस्त्रें म्हणजे वीरभूषणें
रणांत मरणें म्हणजे जगणें
आवेशाचें गा हें गाणें
आणि ठरूं या जंगबहादुर ! "
—— शुद्ध ढोंग हें !
एकच यामधि खरा अर्थ पण ——
शूर व्हायचें जमेच ना !
जमेच ना, घडेच ना
कळेच ना, पटेच ना ! ॥४॥

हतबुद्धांना गतीच कांहीं
मरण्यावांचुनि उरली नाहीं !
चुकांमागुनी चुका जाहल्या
एक एक त्या पुसून टाकत
हवें जावया उगमापाशीं,
'अगा, सुईच्या अग्राबरती
बसणें जितुकी शक्य धरित्री
मिळेल तुज तितुकीहि न परती'
—— याहि चुकीच्या
चला शक्य तर जाऊं मागें.
जो तो अगदीं हेंच सांगतो, हेंच घोकतो !
चुका परंतू भुतांसारख्या
भेवडावितो
दांत विचकती
प्रत्येकाप्रति.
चुकाच त्या कीं दाहक गोळे ! ॥५॥

अजी, बन्दूकका निशान साधना, हुक्म होते ही चाप खींच देना अथवा ऊपरसे आग उगलना—क्या यह बहादुरी है ?

अरे, यह तो नामर्दोंको इकट्ठा करना है, कायरताके कारण लुकना-छिपना है। जो स्वयं पराजित है, वह दूसरोंको सिखाता है—

"शस्त्र वीरोंके भूषण हैं, युद्धमें मरना याने जिन्दा रहना—इस गीतको आवेशसे गाते चलो और तब हम जंगबहादुर बन जाएँगे।"

—यह शुद्ध ढोंग है ! लेकिन इसमें एक ही बात सत्य है कि हमें बहादुर होना जमता ही नहीं !

जमता ही नहीं, होता ही नहीं, ध्यानमें आता ही नहीं, पटता ही नहीं ! ॥४॥

जिनकी बुद्धि मारी गई है, उनके लिए अब मरनेके अलावा और कोई रास्ता बचा ही नहीं है।

गलतियोंके बाद गलतियाँ हुईं। एकके बाद एक—उन सबको मिटाते हुए जहाँसे गलतीका प्रारम्भ हुआ था, वहीं हमें पीछे लौट चलना चाहिए। "अजी, सुईकी नोकपर जितनी धरती आती है उतनी भी तुम्हें नहीं मिलेगी।"—इस गलतीके भी और पीछे, आओ हम लौट चलें।

—सब यही कहते हैं, इसे ही दुहराते हैं ! किन्तु गलतियाँ भूतोंकी तरह पीछे पड़ी हैं; दाँत बिचका-बिचकाकर हर एकको डराती हैं ! वे गलतियाँ हैं या दाहक गोले ? ॥५॥

धरावया चिमटींत तयांना
उचलुन बुडवायास सागरीं
कुणास छाती ? कुठें तयारी ?
उभे फिरवुनी पाठी सारे !
अहो, निघाला शिष्टाईला
अवतारी परमात्मा साक्षात
फलश्रुती पण ? —
जमेच ना, घडेच ना
बनेच ना, पटेच ना ॥६॥

म्हणुनि निघाले जाहिरनामे —
"पायावर जे उभे राहती
कवायतीला ते या पुढती"
कवायतींतिल परी बुटांच्या
एकमुखानें वदती टाचा
त्यांची वाचा
ऐका, ऐका, लिहा नि वाचा —
"नव्या जगाची घडी मनोहर
बसेच ना, जमेच ना
घडेच ना, पटेच ना." ॥७॥

निरोप देतांना मातांचीं
विदीर्ण हृदयें ठिबक-ठिबकती
थारोळीं रक्ताचीं जमती
घरीं नि समरीं नद्या वाहती
वाहुनि सुकती, फिरुन वाहती
आणि वाहतां गाणें गाती
ताल जयाला पडघम धरती !
शतकें गेलीं !
युगेंहि गेलीं ! !
परंतु त्यांचें एक पालुपद —
जमेच ना, बनेच ना,
घडेच ना, पटेच ना ! ॥८॥

———

उन्हें चिमटेमें पकड़कर सागरमें डुबो देनेकी किसकी हिम्मत है ? कहाँ तैयारी है ? सब पीठ फेरकर खड़े हैं !

अजी, समझौता करानेके लिए साक्षात् परमात्मा आगे बढ़ा; लेकिन क्या फल हुआ ?—

"जमता ही नहीं, होता ही नहीं, बनता ही नहीं, पटता ही नहीं ! " ।।६।।

——इसलिए जाहिरनामे निकाले गए——

"जो अपने पैरोंपर खड़े हो सकते हैं, वे कवायदके लिए आगे आएँ ।" किन्तु कवायदके बूटोंकी एड़ियाँ एक आवाजमें जो कहती हैं, उसे सुनो; सुनो और गुनो— "हमसे नई दुनियाकी सुन्दर व्यवस्था बैठती ही नहीं; जमता ही नहीं, होता ही नहीं, पटता ही नहीं !" ।।७।।

युद्धमें अपने बेटोंको भेजते समय माताओंके विदीर्ण हृदयोंसे टपक टपककर जो रक्त गिरता है, उससे तालाब भर जाते हैं, घरमें और समरमें इस खूनकी नदियाँ बहती हैं। ये नदियाँ बहती हैं और सूखती हैं, सूखकर फिर बहती हैं और बहते-बहते मार्च गीतकी पड़घमपर गाती हैं।

शताब्दियाँ बीत गईं, युग भी चले गए, लेकिन युगनिर्माताओंकी रट एक ही है:—

"जमता ही नहीं, बनता ही नहीं, होता ही नहीं, पटता ही नहीं ! " ।।८।।

———

१५. देहाचा पूल

[जाति – उद्धव]

पूर्वींच्या इतिहासाचे उलटतां पान एकादें
फुरफुरती आमुचे बाहू जरि गुलाम झालों बंदे
समशेर मुठींत न आज लेखणिचे करितों धंदे
जी नसांनसांतुन बिजली
तेधवां सदा सळसळली
हतवीर्य आज ती झाली
म्हणुनि हें जिणें श्वानाचें कीं देणें हे नशिबाचें ! ।।१।।

'हें नशिब आमुचें'–म्हणुनी वीरांच्या वदति न वाचा
तें स्वतांच्याच रुधिरानें लिहिति लेख निज नशिबाचा
स्वातंत्र्यसाधनीं देती मोबदला ते जीवाचा
ते स्वदेश कल्याणार्थ
लाथाडुनि देती स्वार्थ
मानुनी समर शुचितीर्थ
शौर्याची करिती शर्थ जणु कुरुक्षेत्रिं तो पार्थ ! ।।२।।

१५. देहका पुल

[शिवाजीने स्वराज्य-स्थापनाका उद्योग शुरू कर दिया है, यह देखकर बीजापुर दरबारसे एक मुसलमान सरदार उनका बन्दोबस्त करनेके लिए भेजा गया। वह शिवापुरमे आ पहुँचा है, यह खबर शिवाजीको पूनामे मालूम हुई। उसी समय तीन सौ मावले* सिपाही साथमें लेकर रातों-रात उन्होंने उसपर हमला बोल दिया। खानने अपनी रक्षाके लिए छावनीके चारों ओर खाई खोदकर उसमे लकड़ियाँ जला दी थीं। उस आगसे भरे-पूरे खन्दकको पार करनेके लिए चार वीर मावलोंने अपनी देहोंका पुल तैयार कर दिया था।]

यद्यपि आज हम पराधीन हैं, गुलाम बन गए हैं, हमारी मुट्ठीमें तलवार भी नहीं है, उसके बदले हमें लेखनी चलानी पड़ रही है; फिर भी जब हम पूर्व इतिहासके पृष्ठ पलटते हैं तो हमारे बाहु फड़कने लगते हैं। उन दिनोंमें जो बिजली हमारी नस नसमें हमेशा दौड़ा करती थी, वह आज ठण्डी हो गई है और इसीलिए आज हमें कुत्तोंकी जिन्दगी जीनी पड़ रही है। या यह हमारे नसीबका खेल है? ॥१॥

लेकिन जो वीर होते हैं, वे कभी यह नहीं कहते कि ऐसा ही हमारे भाग्यमें लिखा था। वे अपने ही रक्तसे अपने भाग्यका लेख लिखा करते हैं, और स्वतन्त्रता हासिल करनेके लिए अपने प्राणोंकी बाजी लगा देते हैं। वे स्वदेश-कल्याणके लिए स्वार्थको ठुकरा देते हैं, रणभूमिको पवित्र तीर्थस्थान मानकर अपने उच्चतम शौर्यको प्रकट करते हैं, जैसे कि कुरूक्षेत्रमें पार्थ (अर्जुन) ने किया था ॥२॥

***मावले**:—सह्याद्रिके पूर्वमें, महाराष्ट्रकी पश्चिमी सीमापर स्थित 'मावल' नामक प्रदेशके निवासी। ये बड़े बहादुर, ईमानदार तथा कष्ट सहन करनेमें मजबूत हुआ करते हैं। इन्हींकी सहायतासे छत्रपति शिवाजी महाराजने तीन सौ साल पहले 'स्वराज्य' की स्थापना की थी।

पार्थाचे सुटती बाण त्यापरि हे धावति कोण
त्यांचिया रोमरोमांत संचरले कसले स्फुरण
घनघोरहि काळोखांत दिसतात जे चकाकून
ते बच्चे नच भ्याडांचे
ते मराठेच हाडाचे
ते भोक्ते स्वातंत्र्याचे
सह्यगिरीकुहरांतिल ते छावे जणु शार्दूलांचे ।।३।।

"उचलून विडा दर्बारीं सरदार विजापूरवाला
पुनवडीवरी चालून यावयास शीघ्र निघाला
पातला शिवापुरिं" ऐसें जासूद वदे शिवबाला
वृत्त हें ऐकिती कान
लागलें शिवापुरीं भान
तो वळवि आपुली मान
तों उभे राहिले भाले रिपुरुधिरास्तव तान्हेले ।।४।।

जय भवानिचा गर्जोनी धावले शिवाजी राजे
घेउनी जिवाचे दोस्त तीनशे मावळे सर्जे
ते किरण तयाचे दिव्य तो सहस्रकरसा साजे
स्थापक ते स्वातंत्र्याचे
चालक ते जरिपटक्याचे
तारक ते शिवशाहीचे
गोपाळ ते मुकुंदाचे कीं वानर हनुमंताचे ।।५।।

पातले छावणीजवळी ते काळ कांबळीवाले
खानाचा चूर कराया अंतरांत आतुर झाले
देखिले निखाऱ्यांनीं तों खंदक ते रसरसलेले
पातले भयंकर कोडें
विझवाया जवळि न ओढे
भिववितिं न तया ते खोडे
कल्पना स्पर्शली चित्ता जो तोच पटाइत चित्ता ।।६।।

पार्थके बाणोंके समान तीव्रतासे अपने लक्ष्यकी ओर ये कौन भागे जा रहे हैं? उनके रोम-रोममें यह किस स्फूर्तिका संचार हुआ है कि घनघोर अन्धकारमें भी वे चमकते हुए दिखाई दे रहे हैं! वे डरपोकोंकी औलाद नहीं हैं, वे असली मराठे हैं; वे आजादीके दीवाने हैं। वे मानों सह्याद्रिकी कन्दराओंमें रहनेवाले शेरोंके बच्चे हैं ।।३।।

जासूसने शिवाजीसे कहा :—

"बीजापुर दरबारमें बीड़ा उठाकर बीजापुरका सरदार पुनवड़ी पर हमला बोलनेके लिए शीघ्रतासे कूच कर चुका है और वह शिवापुर तक आ पहुँचा है।" ज्यों ही शिवाजीके कानोंने यह खबर सुनी, शिवापुरकी ओर उनका मन दौड़ गया और जैसे ही उन्होंने अपनी गरदन घुमाई, उन्होंने देखा कि दुश्मनकी खूनके प्यासे अनेकों भाले तैयार खड़े हैं ।।४।।

'जय भवानी' की गर्जना कर शिवाजी महाराज दौड़ पड़े। उनके साथ जान-पर-जान देनेवाले उनके सिपाही-दोस्त, मावले भी दौड़ पड़े। उन मावलोंका वह तेज अनोखा था। उनके कारण शिवाजी सहस्रकर, हजारों किरणोंवाले सूरज जैसे दिखाई देते थे। अपने-अपने जरीके फेंटोंको शानसे सहेजने-सँभालनेवाले वे (मावले) स्वतन्त्रताके संस्थापक थे, शिवाजी द्वारा प्रस्थापित स्वराज्यके वे उद्धार-कर्ता थे। वे कृष्णके गोपाल थे और हनुमानकी वानरसेना! ।।५।।

वे कालरूप, कम्बलधारी, छावनीके पास जा पहुँचे; खानका मान-मर्दन करनेके लिए उनका हृदय आतुर था। किन्तु उन्होंने देखा कि चारों ओर अंगारोंसे लपलपाता हुआ खन्दक अड़ा हुआ है। उन सबके सामने एक भयानक समस्या आ खड़ी हुई। इस आगको बुझानेके लिए पासमें कोई नाला (या झरना) भी नहीं था। लेकिन वही सचमुच शेर (चीता) होता है जिसका दिमाग मुसीबतमें भी काम करे, जरा भी न डरे ।।६।।

ठाकुनी पुढें सकलांच्या जाहला शिवाजी वदता –
'जाणार काय माघारा ?' 'सरकार, काय हें पुसतां!'
'ऐका तर माझें आतां' 'जी तयार हुकुमाकरितां'
'खंदकावरी झाँण कोण
आपुले देह टाकून
मज देईल पूल करून ?'
निघतांच शब्द बाहेर जन निजले त्यावरि चार ।।७।।

त्यांचिया शरीरांवरुनी छावणींत सगळे घुसले
कंठनाल रिपुचे चिरिले रक्त तृषित भाले प्याले
विजयाच्या नव दीप्तीनें उरले ते सारे न्हाले
इतक्यांत उगवला अरुण
तो गुलाल उधळी वरुन
आनंदें भास्करकिरण
दर्शविती स्वातंत्र्याचा उदयकाळ साम्राज्याचा ! ।।८।।

* * *

ती स्वातंत्र्याची गंगा आज हाय आठुनि गेली !
ते चार मावळे गेले ती अवघी सृष्टी सरली !
परि आत्माहुतिची त्यांच्या ती स्मृतीच केवळ उरली!
इतिहास आज हा श्रवतां
वाटेल खंत जरि चित्ता
तरि मनन करावें आतां
कां स्वराज्य तेव्हां झालें कां स्वराज्य सांप्रत नुरलें ?।।९।।

———

शिवाजी सबके सामने खड़े होकर बोले—"क्या हम वापस जाएँगे?" उन्हें जवाब मिला—"महाराज, ऐसी भी बात कभी कही जाती है?"—"तो फिर मेरी सुनो।"—"जी, हम सब तैयार हैं, आपकी आज्ञाकी देर है।"—"खन्दकपर कौन अपनी देह बिछाकर मेरे लिए पुल तैयार कर देगा?"—शब्द सुनते ही चार मावले खन्दकपर सो गए ॥७॥

उनके बदन परसे शेष सभी छावनीमें घुस पड़े और भालोंने शत्रुओंके कण्ठ फाड़कर खूब रक्त-पान किया। लड़ाईमें जो मराठे बचे थे, उनके शरीर खूनसे लथपथ थे, मानों विजयका नया तेज उन्हें नहला रहा हो। इतनेमें अरुणोदय हुआ। वह ऊपरसे अरुण-गुलाल फेंक रहा था और नीचेसे सूर्य प्रसन्न किरणें बगरा रहा था। वे किरणें यह दर्शा रही थीं कि साम्राज्यका उदय हुआ है, स्वतन्त्रता अवतरित हुई है ॥८॥

हाय, वह स्वातन्त्र्य-गंगा आज सूख गई है। वे चार मावले चले गए हैं। उस समयकी सारी दुनिया ही चली गई है। उनके आत्म-बलिदानकी सिर्फ स्मृति ही शेष रह गई है। आज जब हम उस इतिहासको सुनते हैं तो मनमें बहुत बुरा लगता है। फिर भी हमें इसपर सोचना चाहिए कि तब स्वराज्य क्योंकर स्थापित हो सका था और आज वह क्यों चला गया है? ॥९॥

———

१६. मालुं नको ग !

[जाति – युवतिभूषण]

"मालुं नको ग ! मी केलं काय तली ग !"

अश्रुबिन्दु शिशुनयनांमधुनी
टपटप खालीं गालांवरुनी
ओसरले, जणुं गगनांतूनी
तारका तुटली, कीं फुलें वेलिचीं गळतीं ! ॥१॥

वदन-चन्द्रमा तान्हूल्याचा
किंवा झेला नव कुसुमांचा
म्लान दीन तो देखुनि साचा
हृदय मातेचें, द्रवल्याविण राहिल कैचें ? ॥२॥

जरी माय ती मारी वरुनी
तरि पायांशीं तिच्या बिलगुनी
मुखाकडे वर बिचकत बघुनी
वदे वेल्हाळ — "कां देसी आई माल ?" ॥३॥

शब्द बोबडे तशांत असले
माउलिच्या जों कानीं आले
हृदय तियेचें क्षणिं विरघळलें
निवाला कोप, गळली छडि आपोआप ॥४॥

घेइ चटकन उचलुनि वरती
चुंबुनि रडवी मोहक मूर्ती
पदराखालीं स्तनिं लावी ती
तिचेही झाले, अश्रुंनीं नयन मग ओले ॥५॥

१६. माल मत री !

"माल मत री। मैंने ऐसा क्या किया है ?"

शिशुकी आँखोंसे आँसू निकलकर गालोंपर आए और टपटप नीचे गिरे, मानो गगनसे तारे टूट रहे हैं या बेलपर लगे फूल झड़ रहे हैं ।।१।।

अपने नन्हे-से शिशुके चाँद-से मुखड़ेको अथवा नव कुसुमोंके उस गुच्छको, मलीन-दीन देखकर माताका हृदय द्रवित हुए बिना कैसे रहेगा ? ।।२।।

यद्यपि माँ मार रही है तो भी वह उसके पैरोंसे चिपका हुआ है और डरते-बिचकते उसके मुखकी ओर देखते हुए लगातार कहते जा रहा है—'क्यों मालती है माँ, मुझे ?' ।।३।।

उसके तुतलाते हुए शब्द ज्योंही माँके कानोंमें पड़े, त्योंही उसका हृदय द्रवित हो उठा, गुस्सा ठण्डा हो गया और स्वयं बेंत गिर पड़ी ।।४।।

माँने झटसे उसे उठाकर गोदमें ले लिया, रोते हुए उसके मोहक मुखड़ेको चूम लिया और साड़ीकी ओटमें कर उसे अपने स्तनसे लगा लिया। माँ के नयन आँसुओंसे भर आए ।।५।।

निज मातेचें स्फुंदन ऐकुनि
स्तनपानातें देई सोडुनि
मृदु हातानें अश्रू पुसुनी
म्हणे "आई ग ! कुणि तुला मालिलं सांग ?" ॥६॥

•

गालासन्निध गाल बिलगला
गळ्याभोंवतीं हात चिमुकुला
दुजा आईच्या पुशि नयनांला
दृश्य हें बघुन, निवतील न कां कविनयन ? ॥७॥

———

अपनी माताका सिसकना सुनकर बालक स्तनपान छोड़ देता है और अपने नन्हें हाथोंसे माताके आँसू पोंछकर पूछता है—'ए माँ! तुझे किसीने माला? बता।" ॥६॥

गालसे गाल लगा हुआ है। एक नन्हा-सा हाथ माँके गलेमें पड़ा हुआ है और दूसरा हाथ माँकी आँखोंको पोंछ रहा है। यह दृश्य देखकर क्या कविनयन धन्य नहीं होंगे? ॥७॥

———

१७. दैवतें माय-तात

[जाति – दिंडी]

तुम्ही होतां मज पूज्य पूर्वकाळीं
नाहि आजहि ती पूज्यता निमाली
जधीं तुमचें देहावसान झालें
लोचनांचीं झिरपलीं आलवालें ॥१॥

जन्मदात्यांच्या दुःख वियोगाचें
पालकांच्या वात्सल्य – समाप्तीचें
आणि जगतांतिल एकलेपणाचें
किती दुबळ्या दाखवूं वदुनि वाचे ! ॥२॥

मास – वरुषांच्या परी अंतरानें –
नव्हे, – काळाच्या गार फुंकरानें
दाह विरहाचा शमुनि अंतरींचा
झरा नयनीं आटला आसवांचा ॥३॥

आणि आतां थाटल्या प्रपंचांत
अहो, झालों आम्हीच माय-तात !
माय-तातांच्या ह्याच भूमिकांनीं
दिली तुमची थोरवी जाणवोनी ॥४॥

पांखरांची किलबील दीनवाणी
बघुनि भंवतीं, हें हृदय होइ पाणी.
किडा – मुंगीची वाण नेहमीची,
क्षुधाव्याकुल तोषवूं केंवि चोंची ! ॥५॥

१७. देवता : माता-पिता

●

(हे माता-पिता), आप मेरे लिए पहले भी पूजनीय थे और आज भी हैं। आपके प्रति मेरा पूज्य भाव कम नहीं हुआ है। जब आपका देहावसान हुआ, मेरी आँखोंसे आँसुओंकी धारा लगातार झरती-बहती ही रही ।।१।।

जन्मदाताके वियोगका, पालन-कर्ताकी वात्सल्य-समाप्तिका और दुनियामें अनाथ, अकेले रह जानेका दुख मैं अपनी दुर्बल वाणीसे कैसे क्या बताऊँ ? ।।२।।

अनेकों महीनों और वर्षोंका अन्तर पड़ जानेके कारण——नहीं, नहीं, कालकी ठण्डी फूँकके कारण, विरहकी आन्तरिक तड़पन शान्त हो गई है और इसलिए आँसुओंका झरना नयनोंमें सूख गया है ।।३।।

और अब तो संसारके प्रपञ्चमें हम ही माता-पिता बन गए हैं। माता-पिता बनकर ही हम आपकी महानताको समझ सके हैं ।।४।।

पक्षीके माता-पिता सोचते हैं, अपने छोटे-छोटे बच्चोंकी दीन चहचहाट सुनकर हमारा यह कलेजा पानी-पानी हो उठता है । क्या करें, चींटियाँ और कीड़े रोज-रोज नहीं मिलते । उनकी कमी बनी ही रहती है । ऐसी हालतमें हमारे इन बच्चोंकी चोंचमें क्या दें, ताकि उनकी भूखकी तड़पन शांत हो? ५

थिटचा अमुच्या पंखांत ऊब कोठें ?
प्राण चिमण्यांचा लोचनांत गोठे !
आणि कळतें सोसतां ताण हाल,
किती आम्हांस्तव कष्टलां असाल ! ॥६॥

गिरिंशृंगांना जेंवि मेघमाला
तुम्हीं पोटीशी घेतलें अम्हांला
जेंवि दिग्गज ह्या वसुंधरेसाठीं
तुम्ही अमुच्या राहिलां पुढें--पाठीं ॥७॥

कळा वृश्चिकदंशशा साहुनीया
अम्हां दिधली शैशवीं अंकशय्या
झोंप बाळांची पावुं नये नाश
म्हणुनि अपुले रोधिले तुम्हीं श्वास ॥८॥

दीप तेवावा जेंवि अहोरात्र
मनें निरलस जागला श्रांतगात्र
मानहानी पतकरुनि रोष लोकीं
तुम्हीं केली नित पाठराखणी कीं ॥९॥

शिळें – पाकें सेवून सणावारीं
जुनें पानें लेवून घरीं दारीं
सदा पुरवावें गोड धड मुलांना
असे अवघड संसार, यज्ञ जाणा ॥१०॥

आज आचरतां तोच यज्ञ-धर्म
थोरवीचें आपुल्या कळे मर्म
आणि येति न जरि आसुं लोचनांत
मना झालीं दैवतें माय-तात ॥११॥

'हमारे इन छोटे-छोटे पंखोंमें वह गर्मी, वह शक्ति कहाँ है ?' यह सोच-सोचकर चिड़ियोंके प्राण आँखोंमें आ जाते हैं। जब हम इन चिड़ियोंको इस तरह चिन्तित-व्यथित देखते हैं, तो हमें ज्ञात होता है कि आपने भी हमारे लिए कितने कष्ट उठाए होंगे! ॥६॥

जैसे मेघमाला गिरि-शिखरोंको हृदयसे चिपका लेती है, वैसे ही आपने भी हमें हृदयसे लगाया था। जैसे दिग्गज वसुन्धराको धारण करते हैं, वैसे आप भी हमारे आगे-पीछे रहा करते थे ॥७॥

बिच्छूके दंशकी-सी वेदनाको सहन करते हुए आपने बचपनमें हमें अपनी गोदमें सुलाए रखा था। कहीं हमारी नींद न टूट जाए, इसलिए आप अपना श्वास तक रोक लिया करते थे ॥८॥

जैसे दीप रातभर जलकर प्रकाश देता रहता है, वैसे ही आप थके रहनेपर भी निरपेक्ष मनसे दिन-रात जागा करते थे। मानहानि आदि की पर्वा न कर, दूसरोंके क्रोधको अपनेपर ओढ़कर संसारमें आपने हमेशा हमारी रक्षा की ॥९॥

त्यौहारोंके दिन स्वयं बासी खाकर, घरमें तथा बाहर जूने-पुराने कपड़े पहनकर, बच्चोंको हमेशा अच्छा खिलाना-पिलाना तथा अच्छा पहनाना — इस प्रकारकी मुश्किल यह गृहस्थी एक प्रकारसे यज्ञ ही है ॥१०॥

आज जब हम उसी यज्ञधर्मका आचरण कर रहे हैं तब हमें आपके बड़प्पनका रहस्य समझमें आ रहा है। इसलिए यद्यपि अब हमारी आँखोंमें आँसू नहीं आते, पर हमारे हृदयोंमें हमारे माता-पिता देवता बने हुए हैं ॥११॥

———————

१८. गोलघुमटांत

[सुनीत – शा. वि.]

जैसा एकच टाकिला जरि खडा त्या संथ पाण्यावरी
एकामागुनि एक कैक वलयें उत्पन्न होतीं तरी
तैसा एकच शब्द गोलघुमटामाजी जरी बोलसी
त्याचे उद्‌भवती निनाद किति हे ! आश्चर्य तूं मानिसी ।।१।।

कां आश्चर्य तुला चमत्कृतिमया कारागिरीचेंच ह्या ?
देहाच्या दुनियेमधेंहि तसली कारागिरी माझिया.
बाले ! तो प्रिय शब्द एकच तुवां उच्चारिला जेधवां
मच्चित्तीं घुमुनी अनंत पटिनीं सामावला तेधवां. ।।२।।

जाती येथिल हे निनाद विलया अल्पावकाशें तरी
बोलाचे श्रवतो निनाद तुझिया हा काल मी अंतरीं
येई ऐकुं इथें, जरी पुसटही टोकास त्या बोलतां.
मौनाचेंहि तुझ्या निनाद घुमती, ही मन्मनीं सूक्ष्मता ।।३।।

आलें काय न हें तुझ्या अनुभवा आश्चर्य ? कारागिरी ?
त्याची आकृति काढिली घुमट हा बांधून कोणी तरी ? ।।४।।

———————

१८. गोल गुम्बजमें

शान्त पानीमें यदि एक भी कंकड़ डाला जाए, तो एकके बाद एक ऐसे अनेक चक्कर पैदा हो जाते हैं। वैसे ही सिर्फ एक ही शब्द कह देनेसे इस गोल गुम्बजमें कितने निनाद पैदा होते हैं—इसीका तुझे अचम्भा लगता है न ? ।।१।।

लेकिन गुम्बज बनानेवालेकी चमत्कारपूर्ण कारीगरीका ही तुझे क्यों आश्चर्य होता है ? वैसी ही कारीगरी मेरे शरीरकी दुनियामें भी तो है। ऐ किशोरी, जब तूने उस एक शब्द 'प्रिय' का उच्चारण किया था, तो उसी समय वह मेरे मानसमें गूँजता हुआ अनेकों प्रकारसे समा गया था ।।२।।

इस गुम्बजके निनादवलय तो थोड़ीही देरमें विलीन हो जाएँगे,किन्तु तुम्हारे उस बोलके निनाद मेरे हृदयमें सदा गूंजते रहेंगे। तुम जरा-सी भी फुसफुसाहट करो, वह मुझे सुनाई दे जाती है। मेरे मनकी सूक्ष्म कारीगरी को तो देखो कि तुम्हारे मौनके भी निनाद उसमें उभरने लगते हैं ।।३।।

क्या तुम्हें मेरे मनकी इस विलक्षण कारीगरीका अनुभव नहीं हुआ ? आश्चर्य है ! अरे, मेरे मनकी उस कारीगरीकी प्रतिकृति ही किसीने इस गुम्बजके रूपमें सरजी है ! ।।४।।

———————

१९. तूंच रमणी !

[वृत्त – शिखरिणी]

कशाला अव्यंग स्वरूप इतुकें लोक भजती ?
कुठें थोडी पावे उणिवहि पुढें गोड महती ?

'मृगाक्षी' तूंतें मी म्हणुन हिणवूं काय हरिणें ?
तुझ्या नेत्रीं तैशी फुलति म्हणुं का चन्द्र–किरणें ?
उषा संध्या आणूं सखि तव कपोलीं उगिच कां ?
तुझी नाहीं दंतावलि तुज गणाया रदनिका.

तुळाया नाकाशीं मुळिच नलगे चंपककळी
शशीच्या बिंबार्धा उगिच भिडवूं काय निटिलीं
कशासाठी ओठीं हुडकुं तुझिया विद्रुम-गुणा ?
वृथा संबोधूं का 'कमल नयना ! पद्मवदना !'

स्तवाया रूपा का हवि तरि करायास तुलना ?
कशाला धुंडाळा वन गगन खाणी उपवना ?

* * * * * *

विना–वैशिष्यानें विलसत तुझें नाक असुनी
रुचें त्याचें मातें स्फुरण अथवा कम्पन मनीं
खऱ्या खोट्या रोषें मुरडि कधिं त्याच्या सुरकुत्या
कितीदां झाल्या गे मज चिडवित्या ना खुलवित्या.

१९. तू ही मेरी रमणी !

लोग-बाग अव्यंग रूपकी इतनी पूजा क्यों करते हैं ? उसीको क्यों चाहते हैं ? उसीकी प्रशंसा क्यों करते हैं ? रूपमें जो कुछ थोड़ी कमी रहती है, आगे चलकर वही महत् सिद्ध होती है न ?

मैं तुझे 'मृगाक्षी' कहकर हिरणोंको शर्मिन्दा क्यों करूँ ? तेरी आँखें प्रसन्नतासे खिल उठती हैं, इसीलिए मैं उन्हें चन्द्रकिरण क्यों कहूँ ? तेरे मुरझाए कपोलोंके वर्णनके लिए मैं नाहक क्यों उषा और सन्ध्याको खीच लाऊँ ? और तेरे दाँत भी ऐसे नहीं हैं कि तुझे 'रदनिका' कहा जाए।

तेरी नाकका वर्णन करते समय चम्पक-कलीकी तुलना कतई आवश्यक नहीं है। तेरे भालसे चन्द्रमाके अर्ध बिम्बको यों ही खींच-तानकर ला चिपकानेसे क्या फायदा ? तेरे ओठोंमें विद्रुम गुणोंको क्यों खोजूँ ? क्यों व्यर्थ ही तुझे 'कमल-नयना ! पद्मवदना !' कहकर बुलाऊँ ?

तेरे रूपका गुणगान करनेके लिए तुलना करनेकी भी भला क्या आवश्यकता है ? उसके लिए आकाश-पाताल, वन-उपवनों तथा खदानोंको क्यों टटोला जाए ?

किसी विशेषताके न रहनेपर भी तेरी नाक अच्छी-भली है। मुझे उसका फुरफुराना अथवा कम्पित होना बड़ा भाता है। सच्चे या झूठ मूठके गुस्सेसे जब तुम नाक मोड़ती हो, या मुझे चिढ़ाने-हँसानेके लिए उसे सिकोड़ती हो, तो उसके वे सल मुझे बड़े अच्छे लगते हैं।

उन्हातान्हामाजी अविरत जिनें कष्ट करणें
तिच्या गालीं पद्मासम कुठुन लाली बहरणें?
जरी छाया, ग्वाही मिळतहि तिथें ताम्रपटशी
बगीच्यापेक्षां ती जमिन बरवी बावनकशी.

तुझ्या कान्ते! दन्तावलिमधिल तो एक तिरपा
दुजाचा गेला तो कींधि उडुन बारीक टवका
तयांच्या हें शोभेमधिल मज वैगुण्य खुपलें
खुपावें त्यांनीं,——ते सुखकर तसें सेव्य ठरलें.

तुझ्या ओठांमाजी जरि न इतुका रेखिवपणा
जरी त्यांच्या ठायीं फिकटपण तें आणि करुणा
रुचे होतां त्यांची उकल कींधि संकोचहि तसा
तृषार्ता या तेथें विमल सलिलाचा भरंवसा.

कपाळीं चिंतेचे ध्वज सतत तूझ्या फडकती
कपाळीं कष्टांचे ढग सतत तूझ्या डंवरती
असो तें चिंचोळें, प्रिय मज तरी; फुंकर सखे
तया घालायाला, कवळुनि उरीं, मानस भुकें.

तुझ्या काळ्या डोळ्यांभंवतिं वलयें काळसर तीं
कशी केव्हां आलीं कुठुनि, मजला ज्ञात पुरतीं.
मृगाक्षी पद्माक्षी नसलिस तरी हींच वलयें
स्फुरे चुंबायाची म्हणुनि हृदयीं ओढ, सखये!

कितीही सौंदर्योद्धत झळकल्या मूर्ति भुवनीं
तुझ्या व्यंगानें ही मज सहचरी, तूंच रमणी!

———

धूपमें, भूख-प्यासमें जिसे निरन्तर कष्ट उठाते हुए जीना पड़ता है, भला उसके गालोंपर कमलके समान लालिमा कैसे रह सकती है? वे ताँबे-के रंग जैसे मलिन हो गए हैं तथापि जैसे कि बगीचेसे बावनकशी उपजाऊ जमीन अधिक अच्छी होती है,उसी तरह सुन्दर गालोंसे वे श्रेष्ठ हैं।

अरी कान्ते ! तेरी दन्तावलिमें एक दाँत तिरछा है और दूसरेका एक टुकड़ा कभी टूटकर गिर पड़ा है। उस सुन्दर दन्तावलिका यह वैगुण्य कभी-कभी मुझे चुभा है। भले ही चुभे वह, लेकिन मेरे लिए वे (दाँत) सुखकर और सेव्य ही रहे हैं।

तेरे ओठोंमें यद्यपि जैसी चाहिए वैसी सुघड़ता नहीं है, और वे फीके-फीके-से तथा करुण दिखाई देते हैं; तथापि मुझे उनका खुलना और संकुचित होना अच्छा लगता है। प्यासा तो वहीं जाएगा, जहाँ उसे स्वच्छ जलका भरोसा हो।

तेरे भालपर हमेशा चिन्ताका झण्डा फड़कते रहता है, तेरे माथेपर सदा कष्टोंके बादल मँडराते रहते हैं। तेरा वह भालप्रदेश भले ही सँकरा हो, पर मुझे प्रिय है। हे सखी ! तुझे बाहोंमें समेट, तेरे उस कपालको सहलानेके लिए मेरा हृदय व्याकुल होकर तड़प रहा है।

तेरी श्याम आँखोंके आसपास वे काले घेरे कब, कहाँसे आए, मुझे अच्छी तरहसे मालूम है। तू भले ही मृगाक्षी–पद्माक्षी न हो, पर फिर भी तेरे इन्हीं काले घेरोंको चूमनेके लिए मेरा हृदय उमड़ रहा है।

संसारमें कितनी भी सुन्दर-से-सुन्दर मूर्तियाँ नजर आएँ; फिर भी हे सहचरी,अपने व्यंगोंके साथ भी तू मुझे भाती है और तू ही मेरी रमणी है!

———

२०. पुकार

[जाति – दासी]

"आलों मी, आलों मी !" करि पुकार कोण तरी ?
येणारा नोहे हा राजा वा माधुकरी.
हा पुकार घुमवी नरहृदयींचा नारायण
दाहि दिशा करिती पडसादांनी पारायण ॥१॥

* * * * *

हा पुकार सांगतसे सरला दुरितांधकार
तेजाच्या झारींतुन वर्षत चैतन्य -- धार
तो म्हणतो भयभीतां "झणिं उघडें टाक दार
व्यर्थ तुझी व्हायची न ह्या पुढती लूटमार
तेंवि ना क्षमा तयास होउं म्हणे जो चुकार
वृक्षाच्या वाढीला बांडगुळें जाच भार
खाटल्यावरी कुणास नाहीं देणार हरी
श्रमिकांच्या पाठीशीं मात्र उभा गिरिधारी
घामांतुनि दरवळेल कस्तुरिचा घमघमाट
आणि झळंबेल तसा रत्नांचा लखलखाट
रे, नांगर-फाळाने निज ललाट-लेख लिहा
काळी ही कामदुधा होते की नाहि पहा"
ही ग्वाही देणारा ठाके हा कामकरी
निर्धारें ह्या नटला स्वाभिमान शेतकरी ॥२॥

* * * * *

२०. पुकार

'मैं आया, मैं आया !' इस प्रकार यह कौन पुकार रहा है ? यह आनेवाला न तो राजा है, और न भिक्षुक ही। यह आवाज जनताकी अन्तर्रात्मामें रहनेवाले नारायणकी है। दसों दिशाएँ उसकी प्रतिध्वनिका पारायण कर रही हैं ।।१।।

यह आवाज कह रही है कि दुष्टोंके अत्याचारके दिन ढल चुके। अब तो तेजकी झारीसे चैतन्यकी धाराएँ बरस रही हैं। वह भयभीतोंसे कह रही है—"अब दरवाजा खुला रखो। इसके बाद तुम्हारी व्यर्थ लूटमार नहीं होगी। हाँ, जो कामचोर होगा, उसे क्षमा नहीं किया जाएगा। वृक्षपर जीनेवाला बाँदा (तरुभुक्) वृक्षकी बाढ़की दृष्टिसे कष्टप्रद एवं भाररूप रहता है। खटियापर बैठे रहनेवालेको हरि कुछ नहीं देगा। हाँ, श्रमिकोंका रखवाला गिरिधारी है, जो उनकी मददके लिए हमेशा तैयार रहता है। शरीरसे जैसे-जैसे पसीनेकी कस्तुरी सुगन्ध छूटेगी, वैसे-वैसे रत्नोंकी चमक-दमक दिखाई देगी। (अथवा, जैसे-जैसे परिश्रम किया जाएगा, वैसे-वैसे शरीर रत्नके समान चमकनेवाले स्वेद बिन्दुओंसे चमचमाने लगेगा।) अरे, हल और फावड़ेसे अपने भाग्यका लेख लिखो और देखो कि यह काली जमीन कामधेनु बनती है या नहीं।" इस प्रकारकी आवाज लगानेवाला यह मजदूर खड़ा है, और उसके साथ अपने दृढ़ निश्चयसे सजा हुआ किसान भी ।।२।।

"आलों मी, आलों मी!" कोण करी हा पुकार?
दुबळ्यांना धीराचा वाटावा जो विसार
"लाविसि कां भाळीं कर? कां अश्रू ढाळतोस?
भाग्यास्तव कोणाचे उचलतोस पायपोस?
रे मूढा, ह्या पुढती काय हवी लाचारी?
रे, ज्याचा तोच इथे--कोण दुजा उद्धारी?
येथ आडकाठी नच आवडत्या उद्योगा
ग्रह-राशी सर्वकाळ पुरवितील शुभ योगा
अंथरुणास्तव कोणा नलगे ती दगड धूळ
असलें तर फक्त पूर्व संचितांत शोकमूळ
एरव्ही न कांहि उणे राहणार संसारीं
पोहतील अवघे संतोष मुखा माझारी"
हा पुकार घुमवी नरहृदयींचा नारायण
दाहि दिशा करिती पडसादांनी पारायण ॥३॥

* * * * *

"आलों मी, आलों मी!" देई ही कोण हाक?
हाके मधि भरली त्या जरब कुणा, काय धाक!
"येथ अग्रपूजेचा मानकरी नच धनाढ्य
हारतुरे त्याजलाच जनहितकार जो गुणाढ्य
रेटणार नाहि कुणी कोणाचा येथ बांध
पीडतील नच पुढती दण्डहस्त दुर्मदांध
न्यायदेवि ना गणील मतलबी कटाक्ष, खुणा
शास्त्यामधि जनतेचा पुरता निर्धास्तपणा
फाकतील बुद्धीचे जे जे उन्मेष नवे
ठरतिल ते सुहृदांचे मनुजा कल्याण दुवे"
ललकारत आला युग निर्माता भालदार
खडसावुनि सकलांना सांगत की व्हा हुशार ॥४॥

* * * * *

कमजोरोंको ढाढ़स बँधानेवाली यह आवाज–'मैं आया, मैं आया !' कौन लगा रहा है ? वह दीन दुखियोंसे कहता है, "अरे अपने माथेपर हाथ रखकर क्यों बैठे हो ? क्यों आँसू बहाते हो ? भाग्य बनानेके लिए किसके जूते उठा रहे हो ? ऐ पगले, इसके बाद लाचारीकी क्या आवश्यकता है ? यहाँ हर एक अपने बलसे अपना उद्धार कर सकता है, दूसरा कोई नहीं करेगा । यहाँ अपनी मनचाही कोशिशोंके मार्गमें कोई रोक-टोक नहीं है । अब इसके बाद ग्रह और राशियाँ हमेशा झक मारकर शुभ योग प्रस्तुत किया करेंगी । कोई भी सोनेके लिए धूलभरी पथरीली जमीनका बिछावना नहीं बनाएगा । प्रत्येकको ठीकसे बिस्तर मिलेगा । हाँ, किसीका पूर्वसञ्चित ही ऐसा हो जो दुखका कारण बने, तो बात दूसरी है; अन्यथा इस दुनियामें उसे किसी बातकी कमी नहीं रहेगी । सभी सुख और सन्तोषमें तृप्त होकर तैरेंगे ।" यह पुकार जनताकी अन्तर्रात्माका नारायण लगा रहा है, और दसों दिशाएँ उसकी प्रतिध्वनिका पारायण कर रही हैं ।।३।।

'मैं आया, मैं आया !' यह किसकी पुकार है ? उसकी आवाजमें जो यह आतंक है वह किसके लिए है ? जो धमकी है, वह क्या है ? "यहाँ अग्रपूजाका सम्मान धनाढ्यको नहीं मिलेगा । जनहितके काममें जो गुणाढय (गुणोंका धनी) है, उसे ही मालाएँ और फूलोंके गुच्छे प्राप्त होंगे । यहाँ कोई किसीके खेतकी सीमाको पीछे नहीं धकेलेगा । यहाँ दुष्ट, मदान्ध किसीकी बाहुओंको पीड़ित नहीं करेंगे । यहाँ न्यायकी देवी अर्थपूर्ण कटाक्षों या इशारोंकी पर्वाह नहीं करेगी । जो शासक रहेंगे, उनमें जनता पूरा-पूरा भरोसा कर सकेगी । बुद्धिके जो नए-नए आविष्कार होंगे, वे मनुष्यके सच्चे मित्र तथा कल्याणके साधन रहेंगे ।" इस प्रकारकी ललकार लगाते हुए वह युग-निर्माता, भाग्य-विधाता, युगका भालदार-चोपदार चला आ रहा है । वह सबको बजा-बजाकर कह रहा है––"सावधान रहो, होशियार रहो ।" ।।४।।

"आलों मी, आलों मी!" कोण करीं हा पुकार
जो का क्षतविव्हलास दिव्य औषधोपचार
"आता रणमैदानीं थाटतील उद्यानें
शस्त्रास्त्रें तरि कशास ऋषिमुनिच्या अस्थिविणे?
कर्त्तव्याविण कोणा नाहि जात नाहि धर्म
दुसऱ्याच्या क्षेमाचें अध्याहृत ज्यांत वर्म
प्रभुच्या अवतारास्तव संसृतिच्या मन्दिरात
पुरुष-स्त्री जणु नंदा दीपातिल जोड वात
पूर्व थोर संस्कृतिची चित्तार्मधि चाड धरा
कां विलंब मग व्हाया स्वर्गाहुनि रम्य धरा"
हा पुकार घुमवी नरहृदयींचा नारायण
दाहि दिशा करिती पडसादांनी पारायण ॥५॥

* * * * *

'आलों मी, आलों मी!" काळ नवा देई साद
ह्या मराठ–कवनी तों ऐका भावानुवाद ॥६॥

———

'मैं आया, मैं आया!' यह पुकार किसकी है? यह पुकार घायलों और दुखियोंके लिए दिव्य औषधोपचारके समान है। "अब रण-मैदानोंकी जगह उद्यान खिलेंगे। जिनमें ऋषि-मुनियोंकी अस्थियोंका तेज नहीं है, ऐसे शस्त्राशस्त्रोंको अब कोई जगह नहीं है। कर्त्तव्यके अलावा न तो किसीकी कोई जाति होगी और न कोई धर्म ही। इस कर्त्तव्यमें दूसरोंकी क्षेम (कुशलता) का रहस्य निहित रहेगा। संसृतिके मन्दिरमें स्त्री-पुरुष मानो पूजा-दीपकी जोड़-बाती हैं। अपनी प्राचीन महान संस्कृतिके गौरवको अपने मनमें स्थिर कर लो और देखो कि इस पृथ्वीको स्वर्गसे भी सुन्दर बननेमें कितनी देर लगती है।" मानव-हृदयका नारायण इस प्रकारकी पुकार लगा रहा है। दसों दिशाओंमें उसकी प्रतिध्वनियाँ गूँज रही हैं ॥५॥

'मैं आया, मैं आया!' यह नए युगकी पुकार है। उस पुकारका भावानुवाद इस मराठी कवितामें सुनो ॥६॥

———————

२१. मुठे ! लोकमाते !

लेकरांना दुरावले त्यांचे माय–तात
मायतातांच्या गळ्याला लागली पाण्याची तात

आणि वाहवले गटंगळ्या खात !
महापुरांत पुरे कां पडतात––

शूर साहसी तारणारे हात ?
साऱ्यांचीच झाली ठार वाताहात !

होती वणवण भटकत आई
चिखल माखल्या दमल्या पायीं

गर्दीत दिसला तियेचा कलिजा
धावली म्हणत 'अरे माझ्या राजा !'

आणि गळां त्याच्या घालूनिया मिठी
भर चव्हाट्यांत रडे दुःखी–कष्टी.

घालती कुणाची कुणी समजूत ?
रंजले गांजले सारे एक जात !

शिजवाया कांहीं अन्न-पाणी नाहीं.
शिजवाया कांहीं भांडें-कुंडें नाहीं.

उरे चिरगूट फक्त एक नेसूं !
नाहीं डोळां पाणी गाळायाहि आंसूं !

———————

२१. *मुठे ! लोकमाते !

ऐ लोकमाता मुठानदी, तेरे कारण बालकोंसे उनके माँ-बाप बिछुड़ गए। माताओं-पिताओंके गलेमें पानीका फन्दा कस गया।

और वे डुबते-उतराते हुए बहने लगे। जो हिम्मतबाज और बहादुर तैराक थे, उनके हाथ भी उस महाप्रलयसे कैसे लड़ सकते थे?

बचानेवालोंके शूर, साहसी, तारक हाथ सभी एक साथ तितर-बीतर, गारद हो गए।

माँ दर-दर कीचड़से सने, थके पैरोंसे भटक रही थी।

भीड़में उसे अपने कलेजेका टुकड़ा दिखाई दिया। 'अरे, मेरे राजा!' कहते हुए वह उसकी ओर दौड़ पड़ी।

और उसे बाँहोंमें भरकर, गलेसे लगाते हुए दुखित होकर सरेआम चौरस्तेपर ही रोने लगी।

यहाँ कौन किसको तसल्ली दे? सभी एकसे दुखित और त्रसित हैं।

पकानेके लिए न तो अन्न है और न पानी ही और न ही कोई कुण्डी या बरतन।

पहिननेके लिए सिर्फ एक फटा कपड़ा है, पर रोनेके लिए आँखमें आँसू तक नहीं है!

———————

*मुठा :—सन् १९६१ में पानशेतका बाँध ढह जानेके कारण पूनाके बीचोंबीच बहनेवाली मुठा नदीमे महा भयानक बाढ़ आ गई थी, जिससे पूरा पूना शहर तबाह-बर्बाद हो गया था और करोड़ों रुपयोंका नुकसान हुआ था।